प्रताप-पुस्तक-मालाकी अठारहवीं पुस्तक ।

चीन की राज्यक्रान्ति ।

लेखक
श्री सम्पूर्णानन्द वर्मा,
बी. एस-सी. एल. टी. ।

प्रकाशक—
प्रताप पुस्तकालय
कानपुर

प्रथम संस्करण २००० } १९२१ { मूल्य डेढ रुपया ।

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित ।

प्रकाशक—
प्रताप पुस्तकालय,
कानपुर।

प्रथम संस्करण २०००
सितम्बर १९२१

मुद्रक—
प० छबिनाथ पाण्डेय,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
काशी।

भूमिका।

चीन के इतिहास के साथ भारतीय इतिहास का घनिष्ट सम्बन्ध है। यह दोनों ही पृथ्वी के प्राचीनतम सभ्य देशों में हैं। महाभारत के समय में भी इन दोनों के परस्पर व्यापार का प्रमाण मिलता है। इतना ही नहीं, इन में सम्भवत र नैतिक सम्बन्ध भी था। अस्तु, जो कुछ हो बौद्धकाल से यह सम्बन्ध और भी अन्तरग हो गया। चीन उन देश में है जिन में सम्राट के प्रयत्न से बौद्ध धर्म्म के उपदेष्टा । थोडे ही दिनों में इस धर्म ने चीन मे प्राधान्य प्राप्त किया। उस समय मे अब तक चीनी यात्री बौद्ध तीर्थों के दर्शनार्थ भारत आते है। चीनी के मठों मे बहुत सी सस्कृत पुस्तकें है स्वय 'चीन' नाम भारतीयों का दिया हुआ है।

ऐसे देश के सुख दुख की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। यद्यपि कई कारणों से पिछले चार पाच सौ वर्षों में हमारा और चीन का सम्बन्ध पहिले की अपेक्षा ढीला पड गया पर उसका बीज अब भी है और तब तक रहेगा जब तक चीन में बौद्ध और भारत में आर्य्य धर्म्मा वलम्बी है। मुसलमानी शासन काल मे हमारी दृष्टि अगत्या सकुचित हो गयी, उधर मन्चू शासन ने चीन के स्वतन्त्र जीवन का अन्त कर दिया। दोनों देश ऐसे आपद्ग्रस्त हुये कि उनको बाहर देखने का अवकाश ही न मिला पर अब वह बात नहीं है, चीन का कायापलट हो गया है और भारत में भी जागृति हो रही है। अत वह पुरानी सहानुभूति फिर उद्बुद्ध हो रही है।

सारे प्राच्य जगत में एक विचित्र प्रभा देख पड़ती है नये अरुणोदय के लक्षण प्रत्येक देश में प्रतीत होते हैं। जापान इस समय एशिया का बलवत्तम देश है। उस ने सब से पहिले पाश्चात्य सभ्यता को अपना कर अपने को पाश्चात्य साँचे में ढालने का प्रयत्न किया। इस का उस ने लाभ भी उठाया। योरप और अमेरिका ने सब से पहिले उस का सभ्य की उपाधि दी। योरोपियन आदर्शों के अनुसार और कोई इस उपाधि का पात्र है भी नहीं। एशिया में जापान ही एक ऐसा देश है जो तोप, बन्दूक, बम आदि की विद्या में पूर्ण निष्णात पाश्चात्य जगत की कुछ बराबरी कर सकता है। श्याम स्वतन्त्र होते हुए भी अगण्य है, फारस स्वतंत्र कहलाते हुए भी मृतप्राय है। जापान भी चीनका, और परम्परया भारतका ऋणी है। अत उसके सुख दुःख की ओर चीन और भारतका, केवल इनका ही नहीं, प्रत्युत समस्त एशियाका–, ध्यान जाता है। जापानके विजयोंसे सारे एशिया का मुख उज्वल होता है, उस के पराभव से सारे एशिया का अपमान होता है।

इस भावने जापान को अनायास ही एशियाका नेता बना दिया। सभी देशों को जापान पर श्रद्धा होगयी, जापान सबका ही आदर्श बन गया वस्तुत यह उसके लिये बड़ा भारी अवसर था। इतने बड़े महाद्वीप का नेता माना जाना कोई सामान्य बात न थी। यदि वह यह दायित्व भार सह सकता तो पृथ्वीके इतिहास में उसकी कीर्त्ति अतुल और यश अप्रतिम हो जाता पर उसमें पर्य्याप्त नैतिक बल था ही नहीं वह लोभका किंकर हो गया। अपने पड़ोसियों के स्वत्वापहरण में ही उसने अपनी नीति और शक्तिका महत्व समझा

परन्तु अदृष्ट प्रबल है। वह बुराईसे भी भलाई उत्पन्न कर देता है। जिस समय अमावास्या की रात्रि में आकाश काले बादलों से घिर जाता है उस समय घनीभूतम स्वरूपी मेघमण्डल के गर्भ से विद्युल्लेखा प्रस्फुटित होती है। एशिया के हृदयाकाशको योरोपकी निष्प्रभसभ्यता तो दवा ही रही थी, जापान की स्वार्थमय नीतिने कालिमा को और भी गम्भीर बना दिया परन्तु इसी समय प्रजातन्त्र के समुदाय ने इस बूढ़े महाद्वीप के निर्गत प्राय प्राणों को फिर से रोक लिया। आशा बेलि फिर लहरा उठी।

चीन कोई समान्य देश नहीं है। चीनकी जनसख्या सारी पृथ्वी की जनसख्या के पञ्चमाशसे भी अधिक है। उसकी भूमि रत्नगर्भा है। अकेले होनन और शासी प्रान्तोंमें इतना कोयला है कि यदि आज कलके समान सारी पृथ्वी में प्रति वर्ष साठ करोड़ टन (१ खर्व ६४ अर्व मन) खर्च हो तो २०० वर्ष तक काम चल सकता है? अन्न इतना उत्पन्न हो सकता है कि बाहर से एक पैसे का अन्न न मँगा कर चीन अपनी बचत से अन्य कई देशों का पेट भर सकता है। यह सब होते हुए भी यह किसी गिनती में नहीं है। जो देश पृथ्वी में सर्वश्रेष्ट हो सकता है उसकी गिनती छोटे राष्ट्रों में होती है। जो दस पाच राष्ट्रों का चुटकी में मल सकता है उसकी रक्षा का भार जापान अपने ऊपर लेना चाहता है। जो अपनी सम्पत्ति से दो चार देशों को मोल ले सकता है उसको अन्य ऋणग्रस्त देशों से ऋण लेना पड़ता है।

यह अत्यन्त हीन और अपमानजनक अवस्था है और यही भावना चीनी राजक्रान्ति की जड़ है। जब तक चीनी प्रजा मोह निद्रा में पड़ी थी तब तक उसके मञ्चू विजेता भी

उसे दबा सकते थे और विदेशी राष्ट्र भी उसके साथ मन-माना व्यवहार कर सकते थ, पर चीन के जागृत होने पर ऐसा नहीं हो सकता। मञ्चू शासन तो पहिली अँगड़ाई में ही लुप्त हो गया। रहे विदेशी राष्ट्र वह भी ज्यों २ चीन सँभलता जायगा आप ही कुव्यवहार का साहस त्यागते जॉयगे।

चीनके पास उन्नतिके साधनोंकी कमी नहीं है इसमें सन्देह नहीं कि उसके मार्गमें,बाधाए अनेक हैं परन्तु हमको पूर्ण आशा है कि वह उन सब का अतिक्रमण कर जायगा। उसका उज्ज्वल अतीत उसके उज्ज्वलतर भविष्य की आशा दिलाता ह और किसी का चाहे जो भाव हो पर हम भारत-वासी उसके सच्चे हितैषी हैं। हम इतना ही चाहते हैं कि जिस निःस्वार्थ देशभक्ति ने इस समय चीन को प्राणित कर दिया हैं वह हमारे भावशून्य हृदयों में भी आकर निवास करे।

यह पुस्तक राजक्रान्ति का सम्पूर्ण इतिहास नहीं कहला सकती। पूरा इतिहास लिखने के लिये बहुत बड़ी पुस्तक चाहिये। उस की पूरी २ सामग्री भी अभी नहीं मिल सकती यों कि इन घटनाओंको अभी बहुत थोडा समय हुआ है। इसका काम केवल इतना ही है कि राजक्रान्ति के कारणों, उसकी प्रधानतम घटनाओं और उसके परिणामों का दिग्दर्शन मात्र करा दे।

जालिपादेवी
काशी।
५. ३ ७६

सम्पूर्णानन्द।

चीन की राज्यक्रान्ति

प्रथम अध्याय ।

चीन का प्राचीन और मध्यकालिक इतिहास ।

अन्य प्राचीन देशों की भाँति चीन का भी बहुत सा प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। यही ठीक २ नहीं कहा जा सकता कि 'चीन' शब्द की व्युत्पत्ति क्या है, क्योंकि यह शब्द शुद्ध चीनी भाषा का नहीं है। स्वयं चीनियों का विश्वास है कि वे पृथ्वी पर सब से प्राचीन और सब से सभ्य हैं और उनके विधान इत्यादि उनको साक्षात् स्वर्ग से मिले हैं। उनका यह भी विश्वास है कि ये दैवी नियम सृष्टि की उत्पत्ति से ज्यों के त्यों चले आते हैं और अब भी इन से उत्तम विधान बन ही नहीं सकते।

चीन के सामाजिक संगठन में राज का स्थान सर्वोपरि माना गया है। किसी व्यक्ति के जीवन का स्वतन्त्रतया कोई मूल्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति, राष्ट्र या राज की उन्नति का एक साधन है। इसी लिये चीन में कुल, शील, उपाधि आदि का मान नहीं होता, मान केवल सर्कारी पदवियों का होता है। राज का प्रमुख होने से ही सम्राट् सर्वोपरि आदर का पात्र माना जाता था। राज्यक्रान्ति के कुछ काल पहिले तक सम्राट् 'स्वर्ग-पुत्र'* कहलाता था और उसकी आज्ञा दैवी आज्ञा समझी जाती थी।

---

* चीनी सम्राट् के लिये 'स्वर्ग-पुत्र' इसलिये लिखा गया कि जो चीनी शब्द है उसका यही पर्याय हो सकता है। इसका भाव प्रायः वही है जो हमारी भाषा में 'ईश्वर पुत्र' या 'देव-पुत्र' का होता।

इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि चीन का सम्राट् स्वेच्छाचारी होता था। इस में सन्देह नहीं कि पीछे से चीनी नरेश स्वेच्छाचारी हो गये थे पर पहिले ऐसा न था। जहां तक पता लगता है पूर्वकाल में चीन में कई छोटे २ राज थे, यह प्रायः सभी बातों में स्वतन्त्र थे। पर इन सब के ऊपर एक सम्राट् होता था। जो इन छोटे राजों के अधिपतियों में से प्रबलतम होता, वही सम्राट् हो जाता। इसलिये अपनी स्थिति बनाये रखने के लिये सम्राटों को प्रजा के मत के अनुकूल चलना पड़ता था। इसी लिये अधीन राजों के अधिपतियों को भी प्रजा की इच्छाओं को प्रत्येक बात में पालन करना पड़ता था। स्वेच्छाचारिता की नींव तो तब पड़ी जब देश में शान्ति पूर्णरूपेण फैल गयी, छोटे राजों और उनके नरेशों का स्वातन्त्र्य और बल बहुत कुछ कम होगया और सम्राट् का पद पैतृक होगया।

यों तो चीन की कथाओं में बहुत से नरेशों के नाम आते हैं पर सब से प्राचीन सम्राट् जिनका अस्तित्व ऐतिहासिक कहा जा सकता है ह्वांगटी थे। बहुत से विद्वानों का मत है कि चीनी पहिले कास्पियन झील के दक्षिणी किनारे पर रहते थे और वहां से आकर धीरे २ चीन में बसे थे। बीच में उनको बहुत सी जंगली जातियों से लड़ना भी पड़ा था पर बराबर उनकी ही जीत होती गयी। जो कुछ हो, ह्वांगटी के समय तक यह लोग चीन में अवश्य बस गये थे और जो जंगली जातियां थीं वह या तो इनमें मिल गयीं थीं या इनके अधीन थीं। ह्वांगटी विक्रम से लगभग २७०० वर्ष अर्थात् इस समय से लगभग ४६५० वर्ष पूर्व राज करते थे। उन की महारानी सेलिंगशी ने पहले २ रेशम के कीड़ा को रेशम बनाते देख कर रेशमी कपड़े बनाने की विद्या का आविष्कार किया था। ह्वांगटी की समाधि अभी तक शेंसी में है।

इन के पीछे दो तीन सौ वर्ष तक का फिर किसी प्रसिद्ध नरेश का प्रामाणिक पता नहीं चलता। इस समय के उपरान्त आज से लगभग ४२०० वर्ष पूर्व याऊ नाम के एक सम्राट् हुए। याऊ के पीछे शुन और शुन के

पीछे यू साम्राज्य के अधिपति हुए। यह तीनो ही नरेश बड़े बुद्धिमान और प्रतापी थे। इनके शासनकाल में साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा और समृद्धि भी बहुत रही। यू इन सब में प्रतापशाली थे पर उनके पीछे जितने सम्राट् हुए सब विषयपरायण और राजधर्म्मपराङ्मुख होते गये, यहा तक कि, ची नामक सम्राट् को, जिसका शासनकाल आज से लगभग ३७१३ वर्ष पूर्व था, प्रजा ने सिंहासन से उतार दिया।

जिन विद्रोहियों ने ची को राजच्युत किया था उन के नेता का नाम तांग था। यह बड़ा ही सच्चरित्र और योग्य मनुष्य था। इस लिये प्रजा ने इसे ही सम्राट् चुना। इसका वंश शग वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और उसने लगभग ६०० वर्ष राज किया। विक्रम से १०६७ वर्ष पूर्व अर्थात् युधिष्ठिर सम्वत १६४२ में इसका अन्त हो गया।

अब चाउ नाम का एक व्यक्ति सम्राट् हुआ। यह बड़ा ही दुष्ट स्वभाव का और प्रजा पीड़क नरेश था। इसके या इसके उत्तराधिकारी के शासनकाल में कोचीन-चीन से कुछ राजदूत आये थे। घर लौटती समय उनको मार्ग भूल जाने की आशंका थी। इसलिये, जैसा कि प्राचीन कागजों से पता लगता है, उनको एक 'दक्षिण दिशा सूचक चक्र' दिया गया। विद्वानों का मत है कि यह 'चक्र' 'ध्रुव दर्शक' यन्त्र रहा होगा। इस से प्रतीत होता है कि उस प्राचीन काल में चीन वाले चुम्बक के गुणों से परिचित थे और उन से काम लेते थे।

चाउ के वंश के शासनकाल में ही चीन के प्रसिद्ध नैतिक नेता कॉग फूत्सी (कान्फ्यूशियस) का जन्म हुआ। उस समय के सम्राट् का नाम लिंग था। कांगफूत्सी एक निर्धन घराने के व्यक्ति थे पर उनके हृदय में अपने देश के नैतिक सुधार की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। उनके मत में चीन के प्राचीन सम्राट् आदर्श पुरुष और उनकी आज्ञाएँ आदर्श आज्ञाएँ थी। अत इन्होंने उन सम्राटों की जीवनियों और उनकी आज्ञाओं का संग्रह किया। कॉगफूत्सी की जो कुछ शिक्षा है वह इसी प्राचीन स्रोत से निकली है

और उसका मूल मन्त्र है 'आज्ञापालन'। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह राजाज्ञा को अनिवार्य्य मानकर उस का सहर्ष पालन करे पर यह तभी हो सकता है जब आज्ञापालन का अभ्यास पहिले से पड़ा हो। इसी लिये लड़कों का यह कर्तव्य हुआ कि माता पिता की आज्ञा को अनिवार्य्य मानकर उसका पालन करें। माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से लड़का प्राणदण्ड तक का पात्र हो जाता है। कॉगफ़्त्सी के सिद्धान्त चाहे अच्छे हों या बुरे, उन का प्रभाव चीनियों पर बड़ा ही गम्भीर पड़ा है। इसका एक कारण यह है कि राज ने इन सिद्धान्तों के प्रचार में बड़ा उत्साह दिखलाया, क्योंकि ऐसा करने से प्रजा आज्ञाकारी बनायी जा सकती थी।

युधिष्ठिराब्द २८३६ के लगभग चाउ वंश का भी पतन हुआ। जिस नये वंश के हाथ मे साम्राज्य आया उसका नाम त्सीन था। उस समय भारत और चीन मे बहुत कुछ व्यवहार होने लग गया था। कहा जाता है कि भारतीयों ने त्सीन का अपभ्रंश चीन कर दिया और फिर धीरे २ यही नाम राजवंश से उतर कर समस्त प्रजा और देश के लिये प्रयुक्त होने लगा। फिर भारतीयों के दिये हुए चीन नाम से मुसल्मानों ने चीन और यूरपवालों ने 'चाइना' लिया। सम्भव है यही बात हो क्यों कि जैसा कि हम पहिले लिख आये हैं चीन शब्द चीना भाषा का नहीं है।

इस त्सीन कुल का प्रथम सम्राट ह्वांगटी था। यह भी एक विचित्र मनुष्य था। यह चाहता था कि उस समय के पीछे आने वाले लोग उसे पृथ्वी का प्रथम राजा समझें अर्थात् भविष्य की जनता यह मान ले कि सृष्टि के आदि में ह्वांगटी ही प्रथम सम्राट हुआ। पर यह तभी हो सकता था जब उस से पहिले के समय के अस्तित्व का कोई प्रमाण हा न रह जाय। इसी उद्देश्य से उसने जितने ग्रंथ और पुराने कागज़ मिले नाश करा डाले और ४६० विद्वानों को जीता गड़वा दिया। फिर भी उसकी मनोकामना पूरी न हुई, क्योंकि उस के पुत्र की मृत्यु से उस के

कुल का ही अन्त हो गया और कागफूसी की पुस्तकोंकी कुछ छिपी छिपाई प्रतियों के मिल जाने से प्राचीन काल का वृत्तान्त भी मिल गया।

इसी सम्राट् के समय में चीन की 'बड़ी भीत' बनी। उन दिनों चीन का उत्तरी सीमा पर रहने वाले तातारी बड़ा उपद्रव करते थे, उन्हीं को रोकने के लिये यह भीत उठाई गयी। इसको बनाने के लिये चीन के तिहाइ पुरुष काम में लगाये गये थे। यह चिह्ली, शानसी, शेनसी और कानसुह इन चार प्रान्तों में होती हुइ ७५० कोस तक चली गयी है। इस की ऊँचाइ २० से ३० फुट तक है और दो २ सौ की दूरी पर ४० फुट ऊँचे बुर्ज हैं। इस के नीचे का भाग १५ से २५ फुट मोटा और ऊपरी भाग १२ फुट चौड़ा है।

ह्वांगटी के कुल के अन्त हो जाने पर कुछ काल तक अशान्ति रही। कई भिन्न राजकुल बारी २ आये। पर कोई बहुत दिनों तक टिक न सका। इस समय का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है उस में कोई महत्त्व की बात नहा है।

इन अल्पस्थायी कुला के पीछे हान वश के हाथ में साम्राज्य आया। यह कुल स० १६८६ विक्रमी तक राज करता रहा। इसके शासनकाल में चीन ने बड़ी उन्नति की। कई नये प्रान्त जीते गये और कई अन्य देशों के नरेशा ने चीनका आधिपत्य स्वीकार किया। इस बात को स्मरण कर के चीनी अभी तक अपने को 'हानकी सन्तान' कहते हैं।

इस हानकुल के शासनकाल में ही चीन में बौद्ध धर्म्म ने प्रवेश किया। यह घटना मिंगती नामक सम्राट् के समय की है। एक रात उन्होंने स्वप्न मे अपने पलग पर सोने की मूर्ति देखी जिसने उन को पश्चिम की ओर मनुष्य भेज कर बुद्ध की मूर्तियों और बौद्ध धर्म्म की पुस्तकों के मँगवाने की आज्ञा दी। उन्होंने तत्काल ही कुछ लोगों को भारत भेजा (स० ८६ विक्रमी)। यह लोग अपने साथ कई मूर्तिया और पुस्तकें ले गये। इनके साथ ही भारत से कश्यप मदग नामके एक बौद्ध

साधु गये। इनके पीछे और भी कई भारतीय साधु चीन गये जिनमें से गोभरण और कुमारजीव (जो सम्राट् याओ हिसग स० ३५१ के राज गुरु हुए) अधिक प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगों का मत है कि जो पहिले भारतीय साधु गये थे, या पहिले के बुद्ध हों पीछे गये थे, वह प्रसिद्ध साधु नागार्जुन थे।

उस समय से भारत चीनियों के लिये पवित्र देश होगया। न जाने कितने चीनी यात्री यहाँ बुद्ध के जन्म और निर्वाणस्थान, काशी, बोधगया इत्यादि का तीर्थ स्वरूप दर्शन करने आते थे। इनमें यूएनच्वांग और फाहियन सब से प्रसिद्ध हैं। यूएनच्वांग को तो यात्रि-राज कहना चाहिये। जिस समय वह भारत आये चीन में बड़ा अशान्ति फैल रही थी। राजाज्ञा यह थी कि न कोई बाहर जाये न भीतर आवे पर यूएन ने इसकी परवाह न की। मार्ग में अनेक २ कष्ट हुए। कभी २ उनको चार २ दिन तक बिना अन्न, जल के रहना पड़ा पर वह सच्चे जिज्ञासु और मुमुक्षु थे। अत उन्होंने यह सब सहर्ष सहन किया। भारत आकर उन्होंने बड़े परिश्रम से सस्कृत पढी और कहा जाता है कि समाधिस्थ होकर बुद्ध भगवान के दर्शन भी किये। वह इस देश में १६ वर्ष (सं० ६८८ से स० ७०१ तक) रहे और जाते समय अपने साथ बहुत सी सस्कृत पुस्तकें ले गये। चीन लौटने पर इनका बड़ा आदर हुआ। देहान्त समय तक इन्होंने ७४ बौद्ध पुस्तकों का सस्कृत से चीनी में अनुवाद कर डाला था। इन्होंने सम्राट् हर्ष के शासन और नालन्द आदि भारतीय विद्यापीठों का अच्छा वर्णन किया है। यह भारतीय जहाजों में जावा आदि होते हुए चीन लौटे थे।

फाहियन [या हिआन] स० ४५६ के लगभग आये थे। उस समय इस देश से बौद्ध धर्म्म का प्रभाव उठ चला था और वैदिक धर्म्म का पुन प्रचार बढ़ रहा था। पर प्रधान धर्म्म अब भी बौद्ध ही था।

चीन में बौद्ध धर्म्म का कुछ विरोध हुआ सही पर वह बहुत ही हल्का हुआ। इसका कारण यह था कि अपने जन्मदाता सनातन धर्म्म की भाँति बौद्ध धर्म्म भी सहनशील था। उस ने काग फूत्सा के सिद्धान्तों की

जड़ काटने का प्रयत्न ही नहीं किया। अतः इस समय भी चीनिया के धार्म्मिक विश्वासों में दोनों प्रकार के सिद्धान्तों का मेल है।

हानकुल के पीछे फिर वही दशा हुई। कई राजकुलों ने साम्राज्य का सूत्र बारी २ हाथ में लिया पर इन में से कोई अधिक प्रतापी न था। इन कुलों के नाम कम्वाह्, काम, तग और सुग थे। इस समय की एक बात स्मरणीय है। सम्वत् ८६८ में पुग दाउ नामक एक व्यक्ति ने पुस्तक छापने की विद्या निकाली। जो पुस्तकें चीन में छपती थीं वह लकड़ी के छापे से छपी होती था। पर यह गौरव की बात है कि यह विद्या चीनिया ने यूरपवालों के पहिले आविष्कृत की।

सुग कुल के पीछे मिंग कुल का राज हुआ। इस कुल ने स० १३१२ से १७८७ तक शासन किया। इसका पहिला सम्राट हुग वू था। यह बड़ा प्रतापी और शूरवीर नरेश था पर इसके पश्चाद्वर्ती नरेश वैसे योग्य न हुए। इनमें से अन्तिम का नाम सुगचिंग था। इस के समय में चीन में मञ्चुओं का प्रवेश हुआ। यह घटना अगले अध्याय में वर्णित होगी।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह चीन के प्राचीन और मध्य कालिक इतिहास का एक दिग्दर्शन मात्र है। इसमें दो एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों को छोड़कर, केवल राजनैतिक घटनाओं का संक्षिप्त परिचय कराया गया है क्योंकि इस पुस्तक के लिये इतना ही पर्य्याप्त है। पर इस संक्षिप्त विवरण से ही दो एक परिणाम निकाले जा सकते हैं। यदि ह्वांगटी को ही चीन का प्रथम सम्राट् मान लिया जाय तो उस से लेकर सुगचिंग तक लगभग ४२८७ वर्ष होते हैं। इस बीच में कई बार अशान्ति फैली, कई बार तातार मंगोल, मुसलमान आदि जातियों ने उपद्रव किया पर अन्त में चीन स्वतन्त्र ही रहा। यह कुछ कम गौरव की बात नहीं है। तिस पर सभ्यता और सभ्य कलाओं में उन्नति करते जाना और भी प्रशंसा की बात है।

द्वितीय अध्याय।

मञ्चू राज्य की स्थापना।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि त्सुगचिंग मिंग कुल का अन्तिम नरेश और चीन का अन्तिम चीनी सम्राट् था। उसी के शासनकाल में चीनियों ने अपनी चिर-सुरक्षित स्वतन्त्रता खो दी। इस दुर्घटना के कारण वही थे जो ऐसे अवसरों पर पृथ्वी पर अन्यत्र भी देखे गये हैं। ऐसा बहुत कम हुआ है कि एक जाति, विशेषत एक बहुसख्यक, सभ्य और समृद्ध जाति, को दूसरी जाति ने केवल अपने बाहुबल से दबा लिया हो। प्राय यही देखा गया है कि जातियों ने घरेलू कलह से अपने को दुर्बल बना कर अपना स्वातन्त्र्य खो दिया है। भारत का इतिहास ही इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरणों की खानि है।

यही अवस्था चीन की हुई। कई अयोग्य सम्राटों की परम्परा ने राज का बल कम कर दिया था। इस का फल त्सुगचिंग को भोगना पड़ा। उसके सिंहासन पर बैठने के कुछ ही काल पीछे ले-त्स्नेचिंग और शग-ह्रोहे नामक दो व्यक्तियों ने विद्रोह खड़ा किया। इन्होंने सोचा कि पृथक् काम करने से हमारे आपस में लड़जाने की भी सम्भावना है जिस से सम्राट् हम दोनों को दबा देंगे। अत इन दोनो में यह निश्चय हो गया कि 'ले' तो होनन प्रान्त ले और शग स्जेच्वान और हूकाग।

इस सन्धि से इनका बल और बढ गया और फलत सर्कार का बल और घट गया। प्रजा भी उदासीन सी ही थी उस ने भी राज की कोई विशेष सहायता न की।

कैफुग फू नामक एक बड़ा नगर है। उस में कुछ सर्कारी सेना थी। यह सेना नगर के भीतर के किले में थी। ले' ने इस किले को घेरा। सर्कारी सिपाही वीर थे। उन्होंने दृढ़प्रतिज्ञा कर ली कि शत्रु के हाथ में किला

न जाने देंगे। कुछ दिनों में उनकी सारी खाने की सामग्री समाप्त हो गयी। तब उन्होंने मनुष्य का मांस खाना आरम्भ कर दिया, पर हार न मानी। इतने में एक सर्कारी सेना वहाँ पहुँची। उसके सेनापति को 'ले' से लड़ने का तो साहस हुआ नहीं उसने पीली नदी का बांध काट दिया। फल यह हुआ कि 'ले' के बहुत से सिपाही डूबकर मर गये। साथ ही दो लाख नगरवासी भी मारे गये। 'ले' फिर भी बच गया।

अब उसने सीधे राजधानी पेकिंग को ही आ घेरा। राज महल में एक हिजड़ा रहता था जो उसका गुप्त सहायक था। उसने चुपके से फाटक खोल दिया। फिर क्या था, 'ले' भीतर घुस आया। जब सम्राट् को इस बात की सूचना मिली तो उन्होंने आत्महत्या करली। बस, अब तो कोई रुकावट थी ही नहीं। 'ले' स्वयं राजा बन गया।

उन दिनों मंचूरिया की सीमा पर एक सर्कारी सेना थी। उस के सेनापति को यह बात बड़ी बुरी लगी। उसने मंचुओं के सर्दार से 'ले' को निकालने में सहायता चाही। सर्दार ने भी सहर्ष सहायता देना स्वीकार कर लिया।

यह मंचू लोग तातार जाति की एक शाखा हैं। उस समय में यह लोग आधे जंगली थे इन से चीनियों से नित्य ही कुछ न कुछ झगड़ा लगा रहता था, इसी लिये सीमा पर सेना रखनी पड़ती थी।

अस्तु, मंचू सेना पेकिंग की ओर चली। जब 'ले' को यह समाचार मिला तो उसने पेकिंग में आग लगादी और आप भाग निकला। पर उस को शीघ्र ही अपने दुष्कर्म्मों का दण्ड मिलगया। वह जल्दी ही पकड़ा गया और मार डाला गया।

अब विद्रोह तो दमन हो गया अतः मंचुओं को लौट जाना चाहिये था पर उन्होंने ऐसा न किया। पृथ्वी के इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है कि एक जातिने दूसरी जाति को अपनी सहायता के लिये बुला कर धोखा खाया है। जो दुर्बल है वही दूसरों से सहायता माँगता है, फिर दुर्बल

के देश में आकर कौन जाता है? 'वीर भोग्या वसुन्धरा' ठीक हो या न हो पर 'बलवद्भोग्या वसुन्धरा' में कोई सन्देह नहीं। भारत के इतिहास में इसके भी अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं।

कहाँ मचूरिया और कहाँ चीन? ऐसे समृद्धि शाली देश को छोड़ कर चले जाना—यह पाठ मचुओं ने पढ़ा ही न था। अत उन्होंने चीन में अपना साम्राज्य स्थापित किया। चीनी देखते ही रह गये। आपस की फूट ने उनकी सहस्रों वर्ष की स्वतन्त्रता को बात की बात में मिट्टी में मिला दिया।

मचू राज कुल का नाम ता-त्सिंग था। इसका पहिला सम्राट् शुनचे था। वह स० १५८८ में गद्दी पर बैठा। उस ने चीनियों को सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने का बड़ा प्रयत्न किया। उसको विद्या से भी बड़ा प्रेम था अत उस के समय में राज्य में कोई विद्रोहादि उपद्रव नहीं हुआ।

उसका लड़का कगही भी बड़ा विद्या प्रेमी था। साथ ही, वह पराक्रमी भी बड़ा था। तिब्बत उसीके समय में चीन के आधिपत्य में आया। कगही के पीछे युगचिंग और युगचिंग के पीछे कीनलग सम्राट् हुआ। इस ने 'इली' प्रान्त को जीता और नैपाल को हरा कर कर देने पर विवश किया।

उसका लड़का की-किंग स० १७३९ में गद्दी पर बैठा। यह बड़ा क्रूर स्वभावका नरेश था। इसके २५ वर्ष के शासन में प्रजा अत्यन्त दु:खी रही। इसी के समय में लार्ड मैकार्टनी विलायत से राज दूत बना कर भेजे गये पर उन्होंने काउटाउ* करना स्वीकार न किया, इसलिये उसी दिन लौटा दिये गये।

स १७५४ में इसकी मृत्यु हुई।

इस के पीछे की घटनाएं आधुनिक काल से सम्बन्ध रखती हैं अत उनका उल्लेख आगे के अध्यायों में होगा।

---

* काउटाउ, साष्टाङ्ग दण्डवत् की भाँति का एक प्रकार का प्रणाम है।

तृतीय अध्याय ।



मंचू शासन में चीन की अवस्था ।

मञ्चुओं के विषय मे एक बात स्मरण रखने योग्य है । वह विदेशी होते हुए भी चीन में आकर बस गये थे । उनकी परिस्थिति प्राय वैसी ही थी जैसी कि भारत में मुगलों की थी । विजेता होने के कारण उनके कई प्रकार के विशेष अधिकार थे और बहुत कुछ सुख था पर साथ ही इसके चीन वालों से वह बहुत कुछ मिल जुल गये थे । चीनी बहुत से ऊँचे २ पदो पर नियुक्त हो सक्ते थे यहा तक कि बड़े २ प्रान्तों के छत्रप (सूबदार या गवर्नर) और मन्त्री भी चीनी होते थे । चीनी धर्म्म मचुओ ने भी स्वीकार कर लिया । यहा तक कि सम्राट् भी उन सब औप चारिक कृत्यों और पूजाओं को करते थे जो पहिले के चीनी सम्राट् किया करते थे । मचुओ ने चीनको इतना अपना लिया कि अब उनके पुराने देश मचूरिया में उनकी जाति के शुद्ध मचू प्राय है ही नहीं ।

इस लिये शासन के विषय में जो कुछ लिखा जायगा उस के लिये केवल मचुओं का ही दायित्व नहीं है । बहुत से अंशो मे उन्होंने चीन की पुरानी पद्धति को ज्यों की त्यों रहने दिया ।

पर इस का यह तात्पर्य्य नहीं है कि विजित और विजेता मे कोई अन्तर रह ही नहीं गया । अन्तर बहुत कुछ था । मचू लोग प्राय अपनी ही भाषा बोलते थे, सेना मे उच्चतम स्थान प्राय मचुओं को ही मिलते थे, राजकुल मचू होने से उस पर प्राय मचू सर्दारों का बड़ा प्रभाव पड़ता था । चीनी पुरुष जो स्त्रियों की भांति लम्बी चोटी रखते थे वह मंचुओं का ही प्रसाद था और चीनियों के दासत्व का एक चिन्ह था ।

अब मैं मचू शासन के कुछ अगोंका दिग्दर्शन कराऊंगा क्यों कि इसके बिना आगे की घटनाएं ठीक २ समझ मे नहीं आ सक्तीं ।

१—शासन पद्धति।

चीन में अठारह प्रधान प्रान्त है। यह बहुत सी बातों में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। प्रान्तिक स्वराज जितना चीन में था उतना और किसी देश मे नहीं है। प्रत्येक प्रान्त अपना पृथक् कर (टैक्स) लगाता था, अपनी पृथक् पुलीस रखता था, अपने पृथक् न्यायालय रखता था, यहां तक कि प्रत्येक प्रान्त की सेना तक पृथक् थी। प्रत्येक प्रान्त में एक क्षत्रप (गवर्नर) होता था और दो या तीन क्षत्रपों पर एक सम्राट्-प्रतिनिधि (वाइसराय) होता था।

प्रत्येक प्रान्त में सत्तर से सौ तक 'हीन' होते हैं। 'हीन' ज़िले को कहते हैं। हीनों का क्षेत्रफल हमारे भारतीय जिलों के बराबर होता है। जनसख्या भी उतनी ही होती है। प्रत्येक 'हीन' में एक मजिस्ट्रेट होता है अब तो इन मजिस्टेटों के अधिकार बहुत कम हो गये हैं नहीं तो पहिले इन की वही ऊँची परिस्थिति थी जो आजकल भारतवर्ष में जिलों के मजिस्ट्रेटों की है।

कहीं २ एक विचित्र बात होती थी। दो २ तीन २ 'हीनों' के मजिस्ट्रेटों के दफ्तर एक ही नगर में होते थे अर्थात् एक ही नगर दो तीन 'हीनों' में बँट जाता था। ऐसी दशा में चोरों की बड़ी मौज थी। एक 'हीन' में कुछ अपराध करके, तुरन्त उसी नगर के किसी दूसरे मुहल्ले में जो किसी दूसरे 'हीन' में होता चले जाते। जब तक मजिस्ट्रेट साहब लिखा पढ़ी करें तब तक आप तीसरे 'हीन' में पहुँच जाते। अब यह कुप्रबन्ध जाता रहा है।

अधिकार तो इतना था पर वेतन बहुत ही कम था। बँगाल के बराबर प्रान्त के क्षत्रप का वेतन कुल ७५) (पचहत्तर रुपया) प्रतिमास होता था। फिर भी यह लोग लाखों रुपया कमाते थे। बेईमानी या घूस लेना सामान्य बात थी। सर्कारी नौकरियाँ खुलकर बिकती थीं प्रान्तिक क्षत्रपों का तो कहना ही क्या है, स्वयँ चीन सर्कार के बजट में नौकरियों की बिक्री को स्थान दिया जाता था। यह बात नीचे दिये हुए एक साल के बजट से स्पष्ट हो जायगी।

आय

लेखा	तेल (१ तेल २।) रु० के लगभग होता है)।
मालगुजारी	२६, ४१०, ०००
नमक से लाभ	४, ७५४, ०००
बाहरी माल पर टैक्स	६, ४१६, ०००
नौकरियों की बिक्री	३, ०००, ०००
चाय, मछली, खान, घास, इत्यादि	३२२, ०००
ट्रांस्फर फी	१६०, ०००
चुंगी और फुटकर	८६८, ०००
	६४, ८६६०,०००

पृथ्वी पर शायद ही कोई और गवनमेंण्ट ऐसी बात खुल कर लिखती होगी।

गुप्तचरों और जासूसों की भरमार थी। ऐसा कोई गाँव नहीं था जिसमें दो चार सर्कारी जासूस न रहते हों। यह लोग रत्ती रत्ती की सूचना गवर्नरों को देते थे। यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि यह सूचनायें भूठी या आधी भूठी आधी सच्ची होती थीं। हाँ प्रजा को इनके द्वारा बहुत कुछ हानि अवश्य पहुँचती थी। यह कोई नई बात नहीं है। जहाँ शासक विदेशी होते हैं और प्रजा की इच्छा के अनुसार काम नहीं करते वहाँ ऐसी ही युक्तियाँ चलायी जाती हैं। जो लोग भारतीय सी० आई० डी० के गुणों से परिचित हैं वह इन बातों को भली भाँति समझ सकते हैं। ठीक इसी प्रकार चीनी जासूस चीनी प्रजा के लाभालाभ को न देखकर मन्चू अफसरों को प्रसन्न करना ही अपना कर्तव्य समझते थे।

यह सब तो इन लोगों के सुप्रबन्ध की गाथा हुई। अब इन की योग्यता और अधिकारों के दुरुपयोग को देखिये। जब लार्ड नेपियर अँग्रेज सर्कार की ओर से व्यापार के विषय में निश्चय करने केंटन गये, तो वहाँ के गवर्नर साहब ने उनके भेजे हुए पत्र को लौटा दिया और यह कहला

भेजा " आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ की कोई विदेशी जंगली* पत्र भेजने का साहस करे। दैवी + साम्राज्य के उच्च पदाधिकारी व्यापार की तुच्छ बातों पर दृष्टि नहीं डालते। अंग्रेज जाति से जो दो चार लाख व्यापार के टैक्स के रूप में मिलते हैं उनके लिये दैवी साम्राज्य एक बाल या पर के रोएँ के बराबर भी परवाह नहीं करता। इनका होना या न होना क्षण भर के गम्भीर विचार के भी योग्य नहीं है। "

इस उत्तर को भेज कर गवर्नर साहब ने अपनी योग्यता और दूर-दर्शिता का कितना अच्छा परिचय दिया है। जिस शासन में ऐसे * बुद्धिमानों को इतने अधिकार दिये जाते थे उसका कहना ही क्या है।

२—रक्षा।

देश की रक्षा के तीन साधन हैं (क) सन्तुष्ट और देशभक्त तथा राजभक्त प्रजा, (ख) सामान्य प्रजा में शस्त्र शिक्षा का प्रचार और (ग) सुशिक्षित सेना।

मञ्चू राज्य में प्रजा कहाँ तक सन्तुष्ट और राजभक्त थी या रह सकती थी यह तो स्पष्ट ही है, हाँ चीन के लोग देशभक्त अवश्य थे। दूसरी बात यह थी कि आस पास कोई प्रबल देश था भी नहीं, और जो थे उनपर चीन के पुराने नाम की धाक बैठी हुई थी, इसी लिये सैकड़ों वर्ष तक प्रतिष्ठा बच गयी।

प्रजा में शस्त्र शिक्षा का प्राय अभाव था। हमारी ब्रिटिश सर्कार की भाँति ' शस्त्र विधान ' बनाने की बात तो मञ्चुओं को सूझी नहीं इसलिये जो चाहे शस्त्र रख सकता था। पर चीनियों को शस्त्र विद्या से

* इन लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी में चीन के सिवाय सभी देश जङ्गली और असभ्य हैं और यह विदेशियों के लिए जङ्गली शब्द का ही प्रयोग करते थे।

+ चीनी अपने साम्राज्य को दैवी साम्राज्य कहते थे।

वंचित रखने के लिये और उपाय निकाले गये। सामान्य मनुष्य सैनिक विषय की पुस्तकें नहीं पढ़ सकता था। यदि किसी के पास ऐसी पुस्तकें निकल आतीं तो बड़ा कड़ा दण्ड मिलता था। प्रजा को ऐसी शिक्षा दी गयी, कि शस्त्र धारण करना एक प्रकार का पशुवत् आचरण है। इस कूटनीति का यह परिणाम हुआ कि धीरे २ चीनियों में यह विश्वास जम गया कि सिपाही की वृत्ति बड़ी निन्दित और नीच है और अच्छे लोगों को इससे दूर रहना चाहिये।

अब सेना को लीजिये। ८ मन्चू सेनाएँ थीं। इनको ८ झण्डे कहते थे। इन में ३ झण्डे शेष ५ से ऊंचे माने जाते थे। इन के अतिरिक्त कुछ मंगोल और कुछ चीनी झण्डे थे। इन चीनी झण्डों में वही पतित चीनी थे जिन पर मन्चू सर्कार को पूर्ण भरोसा था। सब मिला कर २४ झण्डे थे। इन में लगभग २००,००० या २२०,००० सिपाही थे।

इन में से कई झण्डे तो पेकिंग के आस पास रहते थे। शेष, प्रान्तों में बँटे थे। प्रत्येक बड़े नगर में कुछ न कुछ सिपाही रहते थे।

झण्डे वालों की वृत्ति पैतृक थी, अर्थात् झण्डे वालों के कुल में जन्म होते ही एक रजिस्टर में नाम लिख लिया जाता था और तभी से उस व्यक्ति का सिपाही होना निश्चित हो जाता था। उसको वेतन का अधिकार भी प्राप्त हो जाता था।

प्रत्येक प्रान्त में झण्डों के वेतन के लिये रुपया पहिले निकाल लिया जाता था। अकेले पेकिंग में प्रतिवर्ष ८,०००,००० तैल (१८,०००,००० रु०) व्यय होता था। इसके अतिरिक्त इनको कई प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। प्रत्येक प्रान्त की राजधानी में जो सेनापति रहता था वह प्रान्तीय क्षत्रप से बड़ा माना जाता था।

इन सब कारणों से चीनी इन से जलते थे। यह बात तो स्पष्ट ही थी कि यह लोग चीनियों को दबाने के ही लिये प्रान्त २ नगर २,

बाजार २ में रक्खे गये थे। इनके दुर्व्यवहार, दुर्भिमान और अयोग्यता ने प्रजाको और भी रुष्ट कर रक्खा था।

इनकी अयोग्यता भी सामान्य नहा, असाधारण थी। नाम को तो बचा २ सिपाही था और वेतन पाता था पर वस्तुत बड़े छोटे सेनापति लोग रुपया हड़प कर लेते थे जो कुछ बचता था वह थोड़े बहुत सिपाहियों को मिलता था। वह लोग भी उस, वेतन नहा, एक प्रकार का पैतृक हक समझने लग गये थे।

बहुत दिनों तक कोई बड़ा लड़ाई भी नहीं पड़ी, जिससे कि इन लोगों को कुछ युद्ध का अभ्यास बना रहता। परिणाम यह हुआ कि यह सब निरे आलसी और दुर्व्यसनी हो गये। पहिले तो यह कलई खुली नहीं पर जब चीन में यूरोपियन आये और उन लोगों के साथ लड़ना पड़ा तब सारी पोल खुल गयी। किया क्या जाय, सर्कार इन स्वयं की सेनाओं को तोड़ भी नहा सकती थी। इस लिये इनके सपुर्द नी पुलिस का काम किया गया और लड़ने के लिये अधिक वेतन देकर नये मनुष्य भरती किये गये। तन से पुराने सैनिकों को 'सिपाही' और नयों को 'वीर' कहने लगे।

वीरों और सिपाहियों में जो भेद था वह नीचे के पत्र से प्रकट हो जाएगा यह पत्र सिपाहियों के एक कर्नल (त्सोलिंग) ने एक उच्च सर्कारी कर्मचारी का पास भेजा था। "अन्ततो गत्वा, सिपाही और वीर में कोई वास्तविक भेद नहीं है। दोनों ही मनुष्य हैं। यदि तुम वीरों के समान मेरे सिपाहियों को वेतन दो तो वह भी वीर हो जायेंगे। यदि मेरे सिपाहियों की भाँति वीरों को भूखे मारो तो वह भी सिपाही हो जायगे। वीर या सिपाही होना पूरे वेतन, पर्याप्त खाना, समुचित शिक्षा और अच्छा बन्दूकों पर निर्भर है।"

आगे चलकर इन वीरों से भी काम न चला और चीन को यूरोपियन ढंग की नयी सेनाएँ भरती करनी पड़ी।

३—शिक्षा।

शिक्षा का सर्कारी प्रबन्ध जितने प्राचीन काल से चीन में होता आता है उतने दिनों से और किसी देश में नहीं हुआ। चीन की सारी शिक्षा का मूल परीक्षण था। परीक्षोत्तीर्ण होने के लिये ही विद्या पढ़ी जाती थी, क्योंकि इससे लाभ बहुत था। परीक्षोत्तीर्ण लोगों को ही सर्कारी नौकरियाँ मिलती थीं। न तो कुल देखा जाता था, न शील, न किसी और बात की योग्यता। बस परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए। हाँ, यह दूसरी बात थी कि जगहें कम होतीं और उनके इच्छुक बहुत, इसलिये गवर्नर आदि को घूस लेने और नौकरी बेचने का अवसर मिलता था।

तीन परीक्षाएँ होती थीं। जो लोग पहिली में उत्तीर्ण होते उनको 'प्रफुल्ल प्रतिभा' जो दूसरी में उत्तीर्ण होते उनको 'उन्नत पुरुष' और जो तीसरी में उत्तीर्ण होते उनको 'प्रविष्ट विद्वान' की उपाधि मिलती था।

पहिली परीक्षा प्रति तीसरे वर्ष प्रत्येक 'हीन' के मुख्य नगर में होती था, दूसरी परीक्षा भी तीसरे वर्ष ही होती थी, पर पहिली के कुछ मास पीछे और प्रान्तीय राजधानी में और तीसरी परीक्षा पेकिंग में होती था। इन के लिये सर्कार समुचित समय निर्धारित कर दिया करती थी।

इन परीक्षाओं में चीन के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर गद्य निबन्ध लिखने पड़ते थे और पद्य रचना करनी पड़ती थी। जिसको सचमुच प्रतिभा कहते हैं उसका काम ही नहीं था। इस बात की प्रतीक्षा ही नहीं की जाती थी, कि विद्यार्थी अपनी बुद्धि से कोई नई बात सोचे। नवीनता या बुद्धि की स्वतन्त्रता से मञ्चूशासन को आघात पहुंचता, इस लिये उसके उभरने का अवसर ही नहीं दिया जाता था। सन १८९८ में सम्राट् ने चाहा कि विज्ञान आदि की भी पढ़ाई हुआ करे पर उनकी भी न चलने पायी।

जो लोग परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते उनको उपाधि और नौकरी मिलने के अतिरिक्त और भी कई लाभ थे। जो जैसी परीक्षा पास करता उसके अनुसार उसके घर पर कुछ सजावट होती, उसके वस्त्र में कुछ

विशेषता होती और सभाओं और भोजों में विशेष स्थान मिलता। इस से बढ़कर बात यह थी कि कोई न्यायालय उनको किसी अपराध के लिये शारीरिक दण्ड (जैसे बेत लगाना आदि) नहीं दे सकता था।

जो लोग नीचे की परीक्षा मे निष्फल होते थे उनमें से ही ग्रामीण पाठशालाओं के मास्टर चुने जाते थे। यह भी एक प्रशंसा की बात है कि चीन में प्राय प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला है और इतने विशाल देश मे अपठित मनुष्यों की संख्या बहुत ही थोड़ी है।

जो लोग तीसरी परीक्षा पास कर लेते थे उनकी सम्राट् के सामने एक विशेष परीक्षा होती और जो लोग इस में पास होते उन्हें मन्त्रिमण्डल में पद मिलते। कभी २ इन पास हुओं की भी परीक्षा होती और उस अन्तिम परीक्षा में जो लोग उत्तीर्ण होते वह देश भर मे सर्वोत्कृष्ट विद्वान माने जाते।

सन १६०६ में जो परीक्षाए हुई थीं उनकी रिपोर्टों से पता चलता है कि कितने परीक्षार्थी होते थे और कितने पास होते थे। १७०४ स्थानों में प्रारम्भिक परीक्षा हुई। यह परीक्षा उपर्युक्त प्रथम परीक्षा देने के लिये योग्यता जाचने के लिये होती थी, २५२ नगरों मे प्रथम परीक्षा और १८ में द्वितीय परीक्षा हुई।

प्रथम परीक्षा के लिये ७६०,००० परीक्षार्थी थे जिनमें से २८,६२८ पास हुए और द्वितीय परीक्षा के लिये १६०,३०० परीक्षार्थी थे जिनमें से १५८६ पास हुए। प्रथम परीक्षा के लिए १ दिन में लेख लिखना पड़ता था, द्वितीय के लिये ३ दिनमें और तृतीय के लिये १३ दिन मे। जब तक लेख पूरा न हो जाय तब तक परीक्षार्थी लोग कैदियों की भाँति पृथक् २ कोठरियों में बंद रक्खे जाते थे।

इतने ही दिग्दर्शन से पता लग जायगा कि, चीन का शिक्षण क्रम क्या था और वह लोगों को कहां तक आज कल के जीवन के योग्य बनाता था।

४—लोगों की सामाजिक दशा।

जिन बातों का ऊपर उल्लेख हो चुका है उनसे ही जनता की सामाजिक दशा का अनुमान हो सकता है। विदेशी शासन में रहने वाली प्रजा से यह आशा करनी कि उसकी सामाजिक दशा उन्नत हो, भूल है। विदेशी शासकों का मूल उद्देश्य अपना, और अपनी जाति का, कल्याण रहता है। वह विजिता का कल्याण वहां तक चाहते हैं जहां तक कि स्वयं उनके कल्याण का सम्पादन हो। यही अवस्था चीन में थी। ऐसा बड़ा देश और ऐसी परिश्रमी प्रजा का नाश हो रहा था क्योंकि जनता के निरुत्साह रहने में ही मन्चुओं का हितसाधन था?

न्यायालय अवश्य थे पर सिवाय बड़े २ अफ़सरों के और कोई मनुष्य सर्कारी कानून नहीं जानने पाता था। ऐसी अवस्था में जैसा कुछ न्याय होता रहा होगा और न्यायाधीशों को रुपया कमाने का जैसा कुछ अवसर मिलता रहा होगा वह स्पष्ट ही है।

कैंएटन के गवर्नर साहब ने लार्ड नेपियर को जो उत्तर दिया था उस से व्यापार का भी अनुमान हो सकता है।

गवर्नमेएट प्रजा को इतना दबाती थी कि जब कभी सम्राट् बाहर निकलते तो लोगों को पृथ्वी पर एक दम लेट जाना पड़ता था।

विशेष ब्योरे की कोई आवश्यकता नहीं है, इतना ही कहना पर्याप्त है कि प्रजा के जीवन में उन्नति का पता नहीं था, उन्होंने मन्चुओं के आगमन से पहिले जो परिस्थिति प्राप्त की थी उससे एक पाँव भी आगे न बढ़े, वरन् पीछे ही हटते गये। हां, उनमें और विदेशी शासन में रहने वाली अन्य जातियों में केवल एक बड़ा अन्तर था। चीन के विदेशी शासक भी एक प्रकार स्वदेशी हो गये थे, वह चीन में ही बस गये थे और महान् अन्तरों के होते हुए भी विजेता और विजित, शासक और शासित, में बहुत कुछ साम्य हो गया था। दो तीन सौ वर्ष साथ रहते २ द्वेष भी कम हो चला था और मन्चू लोग उतना अत्याचार नहीं कर सकते थे जितना कि दूर

देशों में रहने वाले विदेशी शासक कर सकते हैं। उनको उसी देश में और चीनियों के बीच में ही रहना था। दूसरी बात यह थी कि मञ्चू चाहे कितना ही लूट खसोट करते, देश का रुपया देश में ही रहता था। तीसरी बात यह थी कि मञ्चू लोगों ने चीन देश और चीनी सभ्यता को अपना लिया था। इस लिये यूरप आदि अन्य देश वालों के सामने चीनी और मञ्चू का कोई भेद नहीं था। चीनी सर्कार चीन के नाम पर सारी प्रजा की ओर से और सारी प्रजा के पक्ष पर बोलती थी।

५—धार्मिक विश्वास।

भारत की भांति चीन भी प्राचीन काल से ही धार्म्मिक बातों में अत्यन्त उदार रहा है। कान्फ्यूशी के सिद्धान्तों के साथ २ बौद्ध धर्म्म का भी प्रचार होता गया। आपस में कभी कोई विरोध नहीं हुआ। जो कान्फ्यूशी के अनुयायी थे उन्होंने बौद्ध धर्म्म से ध्यान, त्याग, अहिंसा आदि की शिक्षा ग्रहण की। बौद्धों ने कान्फ्यूशी के अनुयायियों से पितृपूजा सीखी। परिणाम यह हुआ कि दोनों सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से कुछ ऐसे सद्विचारों का प्रचार हो गया जो चीन की तत्कालीन आध्यात्मिक भूख को शान्त करने के लिये पर्य्याप्त थे।

ईसाई धर्म्म के साथ भी पहिले पहिल यही भ्रातृभाव वर्ता गया। पर उन्होंने स्वयं धर्म्म के साथ राजनीति को मिलाकर यह दशा पलट दी। उसका जो कुछ फल हुआ वह आगे दिखलाया जायगा।

(द) अन्तर्जातीय व्यवहार।

प्रत्येक सभ्य और स्वतन्त्र राष्ट्र को अन्य सभ्य और स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रखना पड़ता है, और इस सम्बन्ध के विषय में कुछ ऐसे नियमों का पालन करना पड़ता है जो प्राय सर्वत्र माने जाते हैं। चीन को बहुत दिनों तक ऐसे सम्बन्ध और इन नियमों की आवश्यक्ता ही नहीं पड़ी। उसके आस पास असभ्य जातियां थीं, अतः चीनी यह मान

बैठे थे कि पृथ्वी पर उनकी बराबरी का कोई देश ही नहीं था।

जापान तक को यह अपने अधीन मानते थे। एक विभाग था जो जंगली जातियों और कर देने वाले तथा अधीन देशों (जैसे नपाल, तिब्बत, श्याम, अनाम, बम्मा आदि) का काम देखता था। जब यूरप वाले चीन में आने जाने लगे तो यूरोपीय राष्ट्रों से सम्बन्ध रखने वाले सारे विषय भी इसी विभाग को सौंप दिये गये।

कुछ दिनों योंही काम चला पर जब यूरोपियन राष्ट्रों के काम बढ़ गये और इन लोगों ने इस बात पर हठ किया कि हमारे साथ जंगलियों की भाँति नहीं, वरन् समुचित, व्यवहार किया जाय तब सन् १८६० में त्सुङ्ग्ली यामेन (साधारण प्रबन्ध विभाग) नाम का एक अलग विभाग खोला गया जो परराष्ट्रों के साथ सम्बन्धों का निरीक्षण करने लगा। अब इसको वाइ कियाओ-यू कहते हैं।

चतुर्थ अध्याय।



अशान्ति के कारण।

ऊपर के अध्याय मे जिन बातों का उल्लेख हुआ है उनसे ही यह पता लग सकता है कि मन्चू शासन स्थायी नहीं हो सकता था। वह इस योग्य नहीं था कि वर्तमान काल के सभ्य देशों के सामने ठहर सकता। पाश्चात्य देशों का सामना करने के लिये असाधारण परिवर्तनशीलता चाहिए, अपने को बहुत सी बातों में यूरोपियन रंग में रंग लेने की प्रवृत्ति चाहिए। यह बात मन्चुओं में न थी। जो अपने को सर्वगुणसम्पन्न, सर्वविद्यानिष्णात सर्वोपरि शक्तिशाली समझता है वह दूसरे का अनुकरण नहीं कर सकता, दूसरे से शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता। इस लिये मन्चुओं का पतन होना अवश्यम्भावी था।

पर वह पतन अन्य भाँति होता। जो शासन उन्नति शील नहीं है, उसका पतन होता है परन्तु पर राष्ट्रों के हाथ से। विदेशी लोग उसकी अयोग्यता से लाभ उठाकर उसे दबा लेते हैं। परन्तु चीन में ऐसा नहीं हुआ। मन्चू शासन का पतन किसी परराष्ट्र द्वारा नहीं प्रत्युत स्वयं उसकी प्रजा के हाथ हुआ।

ऐसी बात सामान्य नहीं है। बिना किसी विशेष कारण, या कई विशेष कारणों के, प्रजा विद्रोह नहीं किया करती। दो एक कारण तो स्पष्ट ही है। मन्चू विदेशी थे। यह ठीक है कि वह अब चीन के ही निवासी हो गये थे और बहुतसी बातों में उनमे और चीनियों में साम्य हो गया था परन्तु फिर भी उनका विदेशित्व नहीं गया था। बहुत सी बातों में मन्चुओं को विशेष अधिकार प्राप्त थे, अनेक अवसरों पर चीनियों को अपनी हीन अवस्था का अनुभव होता था। यह अवस्था राजनैतिक अशान्ति के लिये क्षेत्र का काम करती है। विजेता लोग अपने स्वार्थमय

स्वत्वा को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये जिन उपाया का आश्रय लेते हैं वही उपाय विजितों के हृदयो को जलाते ह। उनको पद २ पर अपनी हान दशा की स्मृति दिलायी जाती है और उनका मानसिक घाव सदा हरा रहता है।

दूसरी बात यह थी कि मचू शासन न्यायशील नहा था। जहा प्रजा को विदेश के कानूनों का ज्ञान ही न हो वहाँ न्याय का क्या पूछना है। दिन दहाड़ पक्षपात हो होगा। फिर जिस देश में सरकारी नौकरा खुल कर बिकती हो, वहाँ न्याय तो बिकना ही चाहिए। यह भी एक ऐसी बात थी जो प्रजा को असन्तुष्ट रखती थी।

पर इतने ही से विद्रोह नहा हुआ करता। अनेक देशा में विदेशी शासन ह, अन्याय भी है, पर लोग चुपचाप सह लते हे। स्थितिस्थापकता जड हा नहीं, चैतन्य जगत म भी काम करती है। मनुष्य जिस दशा म रहता है उसे जल्दी परिवर्तन नहा करता। जब कोइ ऐसी ही असामान्य बात होती है तब जनता की मोहनिद्रा टूटती है। अत हम को यह जानना चाहिए कि वह विशेष कारण कौन से थे, जिन्होंने चीनी प्रजाको जगा दिया।

इन कारणों पर विचार करने के पहिले एक बात को स्मरण रखना चाहिए। चीनी प्रजा मे अभी तक जातीयता का भाव विद्यमान था, विजित होने पर भा उन्होंने अपनी सभ्यता द्वारा अपने विजेता मचुओ को भा जान लिया था, विदेशियों की दृष्टि म चीनी और मचू मे उतना भेद नहा था जितना कि प्राय विजित और विजेता मे होता है, चीन में कोई ऐसा विधान नहा था जो प्रजा के पुरुत्व का अपहरण करता हो। अत चीनी प्रजा में बहुत कुछ जात्याभिमान, राष्ट्राभिमान और देशाभिमान अवशिष्ट था। अग्नि बुझ नहा गई थी, धीरे २ भीतर सुलग रही थी, बाह्य सघर्षण की देर थी, उसके मिलते ही यकायक धधक उठा।

यों तो चीनी उत्थान के कई कारण थे पर उन सब का इस जगह वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ उन तीन या चार प्रधान कारणों पर ही

चतुर्थ अध्याय ।



अशान्ति के कारण ।

ऊपर के अध्याय मे जिन बातों का उल्लेख हुआ है उनसे ही यह पता लग सकता है कि मचू शासन स्थायी नहा हो सकता था। वह इस योग्य नहीं था कि वर्त्तमान काल के सभ्य देशों के सामने ठहर सकता। पाश्चात्य देशों का सामना करने के लिये असाधारण परिवर्तनशीलता चाहिए, अपने को बहुत सी बातों में यूरोपियन रंग में रग लेने की प्रवृत्ति चाहिए। यह बात मञ्चुओं में न थी। जो अपने को सर्वगुणसम्पन्न, सर्वविद्यानिष्णात सर्वोपरि शक्तिशाली समझता है वह दूसरे का अनुकरण नहा कर सकता, दूसरे से शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता। इस लिये मचुओं का पतन होना अवश्यम्भावी था।

पर वह पतन अन्य भाँति होता। जो शासन उन्नति शील नहीं है, उसका पतन होता है परन्तु परराष्ट्रों के हाथ से। विदेशी लोग उसकी अयोग्यता से लाभ उठाकर उसे दबा लेते हैं। परन्तु चीन मे ऐसा नहीं हुआ। मचू शासन का पतन किसी परराष्ट्र द्वारा नहा प्रत्युत स्वय उसकी प्रजा के हाथ हुआ।

ऐसी बात सामान्य नहा है। बिना किसी विशेष कारण, या कई विशेष कारणों के, प्रजा विद्रोह नहीं किया करती। दो एक कारण तो स्पष्ट ही हैं। मचू विदेशी थे। यह ठीक है कि वह अब चीन के ही निवासी हो गये थे और बहुतसी बातों में उनमे और चीनियों में साम्य हो गया था परन्तु फिर भी उनका विदेशित्व नहा गया था। बहुत सी बातों में मचुओं को विशेष अधिकार प्राप्त थे, अनेक अवसरों पर चीनियों को अपनी हीन अवस्था का अनुभव होता था। यह अवस्था राजनैतिक अशान्ति के लिये क्षेत्र का काम करती है। विजेता लोग अपने स्वार्थमय

स्वत्वों को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये जिन उपायों का आश्रय लेते हैं वही उपाय विजितो के हृदयों को जलाते हैं। उनको पद २ पर अपनी हीन दशा की स्मृति दिलायी जाती है और उनका मानसिक घाव सदा हरा रहता है।

दूसरी बात यह थी कि मंचू शासन न्यायशील नहीं था। जहां प्रजा को विदेश के कानूनों का ज्ञान ही न हो वहाँ न्याय का क्या पूछना है। दिन दहाड़ पक्षपात होता था। फिर जिस देश में सर्कारी नौकरी खुल कर बिकती हो, वहाँ न्याय तो बिकना ही चाहिए। यह भी एक ऐसी बात थी जो प्रजा को असन्तुष्ट रखती थी।

पर इतने ही से विद्रोह नहीं हुआ करता। अनेक देशों में विदेशी शासन है, अन्याय भी है, पर लोग चुपचाप सह लेते हैं। स्थितिस्थापकता जड़ ही नहीं, चैतन्य जगत में भी काम करती है। मनुष्य जिस दशा में रहता है उसे जल्दी परिवर्त्तन नहीं करता। जब कोई ऐसी ही असामान्य बात होती है तब जनता की मोहनिद्रा टूटती है। अतः हम को यह जानना चाहिए कि वह विशेष कारण कौन से थे, जिन्होंने चीनी प्रजाको जगा दिया।

इन कारणों पर विचार करने के पहिले एक बात को स्मरण रखना चाहिए। चीनी प्रजा में अभी तक जातीयता का भाव विद्यमान था, विजित होने पर भी उन्होंने अपनी सभ्यता द्वारा अपने विजेता मंचुओं को भी जीत लिया था, विदेशियों की दृष्टि में चीनी और मंचू में उतना भेद नहीं था जितना कि प्रायः विजित और विजेता में होता है, चीन में कोई ऐसा विधान नहीं था जो प्रजा के पुंस्त्व का अपहरण करता हो। अतः चीनी प्रजा में बहुत कुछ जात्याभिमान, राष्ट्राभिमान और देशाभिमान अवशिष्ट था। अग्नि बुझ नहीं गई थी, धीरे २ भीतर सुलग रही थी बाह्य संघर्षण की देर थी, उसके मिलते ही यकायक धधक उठा।

यों तो चीनी उत्थान के कई कारण थे पर उन सब का इस जगह वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ उन तीन या चार प्रधान कारणों पर ही

विचार किया जा सकता है जो दीर्घ प्रभावशाली, स्वतन्त्र, और महत्वपूर्ण थे। शेष कारण इनके महकारी या अन्तर्गत थे।

(क) ईसाई धर्म्म की यूरोपियन सम्पृक्तता

हम अगले अध्याय मे लिख आये हैं कि चीनी धर्म्म के विषय में अत्यन्त उदाराशय हैं। वह किसी के धार्म्मिक विचारों में विघ्न नहीं डालते। इतना ही नहीं, वह धार्म्मिक प्रचार में भी बाधा नहीं डालते। पर यूरोपियन जातियों ने उनको ऐसा करने न दिया। यूरोपियन जातियों के धर्म्म की आड़ में राजनैतिक शिकार खेलने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जब किसी यूरोपीय राष्ट्र की किसी देश पर कुदृष्टि पड़ती है तो वहा कुछ ईसाई मिशनरी और पादरी भेज दिये जाते हैं। वह लोग वहा जाकर अपना धर्म्म फैलाते हैं और वहा के लोगों के रहन सहन को यथाशक्ति बिगाड़ते हैं। जिन लोगों को नये ईसाई बनाते हैं उनको तो देश और समाज का पूरा शत्रु बना देते हैं। परिणाम यह होता है कि लड़ाई झगड़ा होता है और एकाध पादरी मारा जाता है। बस इसी बात का बहाना लेकर उसकी सर्कार उस बेचारे देश के सिर हो जाती है। ऐसा सब जगह न होता हो, पर अनेक स्थलों में यूरप के राष्ट्रों ने इस कूट नीति का आश्रय लिया है और देश के देश हड़प गये हैं। इस नीति में एक बड़ा मजा यह है कि अपनी स्वार्थ सिद्धि होती है और दोष दूसरे पर लगता है। यह आज कल की बुद्धिमत्ता और नैतिकता का एक प्रमाण है। जैसा कि सर जान वुडरॉफ अपनी 'इज इण्डिया सिविलाइज़्ड' (Sir John Woodroffe Is India Civilized ?) में लिखते हैं 'But the vulgarity of turning religion into a means of money-making and Empire building has been reserved for our political and commercial time' "परन्तु धर्म्म को राज्य बढ़ाने और धन कमाने का साधन बनाना एक ऐसी नचिता

है जो हमारे राजनैतिक और व्यापारी काम के लिये ही रख छोड़ी गयी थी।"

यह सब ईसाई धर्म्म का दोष नहीं है। ईसा योगी और महापुरुष थे उन्होंने कभी ऐसी खोटी शिक्षा नहीं दी। दोष उन राजनीतिज्ञों का है जो ऐसी नीति से काम लेते हैं, उनसे भी अधिक दोष उन पादरियों का है जो धर्म्मोपदेशक के पवित्र नाम को इस प्रकार कलंकित करते हैं।

अस्तु यही चाल चीन में चली गयी। चीन बहुत बड़ा देश है, इससे उस को निगल जाने का विचार तो स्यात् न रहा हो पर कम से कम यह उद्देश्य तो रहा ही होगा कि उस को कठिनाइयों में फँसा कर अपना दास कर लें और व्यापार (या दूसरे शब्दों में लूट) सम्बन्धी मनमाने अधिकार प्राप्त कर लें। इस नीतिका पालन वर्षों तक हुआ पर यहां सुभीते के लिये सब घटनाएँ एकत्र कर दी गयी हैं। नीति का जो कुछ परिणाम हुआ वह घटनाओंके पढ़ने से ही प्रकट हो जायगा।

छोटे २ झगड़े तो कई हुए, और इनका होना स्वाभाविक था। जैसा कि पार्कर ने लिखा है। कई ऐसे सर्कारी टेक्स और कर थे जो चीन में सब ही को देने पड़ते थे पर जब कोई व्यक्ति ईसाई हो जाता तो पादरी लोग उन टेक्सों को धर्म्मविरुद्ध बतला उसे कर देने से मना करते। पार्कर के ही शब्दों में "Such religious animosity as exists has often had to thank the mistaken zeal of Roman Catholic and Protestant missionaries for its own birth & growth, or, as in the Boxer case, is indirectly owing to the 'blood of the martyrs' having been used for political gain" अर्थात् "जो कुछ धार्मिक वैमनस्य है उसका कारण या तो रोमन कैथालिक और प्रोटेस्टेयट पादरियोंका भ्रमपूर्ण उत्साह है या यह कि जैसा कि, बौक्सर विद्रोह में हुआ, धर्म्मवीरोंके रक्त से राजनैतिक लाभ उठाया गया है"। (जैसा कि

आगे प्रतीत होगा, बॉक्सर विद्रोह के समय कुछ पादरी मारे गये, इसी बात के बहाने यूरोपियन राष्ट्रों ने बहुत कुछ राजनैतिक लाभ उठाया)।

स० १६०७ (सन् १८५०) के लगभग चीन में हुग स्यूत्सउवान नाम का एक मनुष्य रहता था। वह सामान्य शिक्षा प्राप्त था पर बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे कोई उच्च पद न मिला। इससे उस का हृदय बड़ा दु खी रहता था। ऐसी ही अवस्था में वह ईसाई हो गया। अब तो उसे विचित्र २ अनुभव होने लगे। यहा तक कि उसे ईश्वर और ईसा ने मञ्चुओं को निकाल कर नया राज्य स्थापित करने की आज्ञा दी।

हुग अपने को एक प्रकार का ईश्वरीय दूत समझने लगा और क्वाग नग और क्वागसी प्रान्तोंमे एक नये धर्म्म का उपदेश करने लगा। यह धर्म्म ईसाई मतका एक रूपान्तर था जिसमे राजद्रोह को प्रधानता दी गयी थी। धीरे २ इसके साथी बढ चले और स० १६१० (सन् १८५३) मे इन लोगो ने नैंकिंग नगर ले लिया। वहीं हुग ने अपने नवीन राजवश की स्थापना की। इस वश का नाम ताइपिग (परम शान्ति) था। इसी से इस विद्रोह को ताइपिंग विद्रोह कहते है।

नैंकिंग की जीत के पीछे हुग का सिर फिर गया। वह आलसी और दुराचारी हो गया और नित्य ईश्वर के नाम से नये २ विचित्र आदेश निकालने लगा। पर उसके साथी उत्साही थे और उनका सेनानी चुग-वाग बड़ा ही वीर और योग्य सिपाही था।

वाग के नेतृत्व में इन लोगो ने पेकिंग की ओर बढनेका विचार किया। रास्ते मे इनसे सर्कारी सेनाओं से कई लड़ाइया हुई जिनमें बहुधा इनकी जीत हुई। यदि उस समय चीन सर्कार को लि हुग चाग, ऐसे योग्य मन्त्री की सहायता न मिलती तो इस विद्रोह से न जाने कितना अनर्थ होता।

लि उन दिनों मन्त्री न थे। वह घर पर ही रहते थे। पर जब उन्हों ने विद्रोहियो को पेकिंग की ओर बढते देखा तो कुछ मनुष्यो की एक छोटी सी पल्टन प्रस्तुत करके वाग की सेनाके पीछे पड गये। यही लि की

वृद्धि की जड है। चीन सकार ने उनकी योग्यता देख कर विद्रोह्दमन का सारा भार प्राय उनपर छोड़ दिया।

वाग के मार्ग में शघाई नगर पडता था। वहा के कुछ विदेशी (यूरापियन) निवासियों ने उसको शघाई जीतने में सहायता देने का वचन दिया। पर जब वह नगर के पास पहुचा तो न जाने क्या समझ कर अपने वचन से फिर गये। अस्तु, इसी समय शघाई के कुछ व्यापारियों न एक पल्टन प्रस्तुत की। इसमें १०० यूरोपियन भी भरती थे और इसके सेनापति का नाम वार्ड था। वार्ड एक योग्य व्यक्ति था पर उसका शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। उसका उत्ताराधिकारा बर्गेवाइन दुष्ट मनुष्य था। पर अन्त में लि ने उसको निकलवाकर गार्डन को सेनापति बनाया। इसी सेना के प्रयत्न से धीरे २ ताइपिंग विद्रोह शान्त हो गया।

स०१९२७ (सन् १८७०) मे फिर एक झगडा हुआ। तेज्जिन नगर में कुछ फ्रेञ्च पादरी रहते थे। अपने नियमानुसार इन लोगाने नये ईसाइयों का पक्ष लेकर अन्धेर मचा रक्खा था। फल यह हुआ कि एक छोटा सा विद्रोह खडा हो गया जिस में पादरिया के अतिरिक्त फ्रेञ्च कॉसल (फ्रान्स का प्रतिनिधि) भी मारा गया। अन्त में लि ने जाकर झगडा ठण्डा किया।

अभी तक जिन झगडों का कथन हुआ है वह छोटे थे। उनका स्वय कोई दृश्य स्थायी परिणाम नही हुआ। हा, यह हुआ कि चीनी और यूरोपियन में मनोमालिन्य बढता गया और उस अन्तिम झगडे के लिये क्षेत्र प्रस्तुत होता गया जिसका फल चीन आज तक भुगत रहा है।

स१९५७ (सन् १९००) में चीन मे सम्राट क्वागहसू राज कर रहे थे। यह शासन म कुछ सुधार करना चाहते थे परन्तु राजमाता त्सु त्सि सुधारा के विरुद्ध थीं और पुराने विचारों के सभी कर्म्मचारी उनका साथ देते थे। इन लोगों का पक्ष प्रबल था और फलत सम्राट् की एक न चली। वह नाम२ के ही सम्राट् रह गये। सारा अधिकार राजमाता के हाथ में आ गया।

अब राजमाता और उनके अनुयायियोंने सुधारों की जड़ ही काट देने का विचार किया। जब तक चीन में यूरोपियन आते जाते रहेंगे तब तक किसी न किसी रूप में सुधारसमीर बहता ही रहेगा। अत यदि सुधारों की धारा रोकना है तो पहिले यूरोपियनों से पीछा छुड़ाना चाहिए।

बस यह लोग इसी का अवसर ढूंढने लगे। अवसर शीघ्र ही मिल गया। उन दिनों चीन में 'आइ-हो कुआन' नाम की एक गुप्त सभा थी। सभा थी तो बहुत पुरानी पर उन दिनों उसका बल बढ़ गया था। इस नाम का अर्थ है "धार्म्मिक मेल का घूसा"। इसी से इस सभा के सदस्य अंग्रेजी में 'बॉक्सर' अर्थात् 'घूसा मारने वाले' नाम से प्रसिद्ध हुए।

उन दिनों चीन में ईसाइयों का प्रभाव बढ़ रहा था। गाँव के गाँव ईसाई बनाये जा रहे थे और नये ईसाइयों में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उद्दण्डता की मात्रा बढ़ती जा रही थी। यदि कोई कुछ आक्षेप करे तो यूरोपियन पादरी अपने २ प्रबल सहायकों यूरोपियन राष्ट्रों का आश्रय ले सकते थे। इस व्यवहार से चीन सर्कार के काम में भी अड़चन पड़ती थी और प्रजा में भी अशान्ति फैलती थी। इसी अशान्ति ने इस गुप्त सभा को विकास का अवसर दिया।

सन् १९०० की जनवरी में शानतुंग में चीनियों और ईसाइयों में कुछ दंगा हो गया जिसमें मि ब्रुक्स नामक एक अंग्रेज पादरी मारा गया। अंग्रेज सर्कार ने इस बात को लेकर चीन सर्कार से वाद विवाद करना आरम्भ किया। चार महीने यों ही चले गये। ईसाइयों का दिमाग चढ़ता ही गया। परिणाम यह हुआ कि मई में फिर दंगा हुआ और कई चीनी ईसाई मारे गये। २ री जून को मि नार्मन और मि राबिंसन नामक दो अंग्रेज पादरी फिर मारे गये।

बस अब तो आग फैल गयी। तेन्ज़िन से लेकर पेकिंग तक सारा प्रदेश बाक्सरों के हाथ में आ गया। पेकिंग में जो यूरोपियन और चीनी ईसाई थे इनको भी अत्यन्त भय था। अत इन लोगों ने अंग्रेजी लिगेशन

[वह गृह जिसमे अंग्रेजी राजदूत रहता था] में शरण ली और इस घर तथा इस के आस पास के घरों की रक्षा सभी यूरोपीय देशों के तथा जापान के जो कुछ थोड़े बहुत सिपाही मिल सके उनके तथा देशी ईसाइयों के सपुर्द की गया।

११ जून को जापानी लिगेशन का चेंसलर मारा गया, १३ जून को कई गिर्जे लूट लिये गये और २० जून को जर्मन राजदूत मारा गया।

अभी तक यह नहा कहा जा सकता था कि चीन सर्कार क्या करना चाहती है। सर्कारी सेनाओं ने अभी तक खुल कर बाक्सरों का साथ नहीं दिया था, यद्यपि यह सभी जानते थे कि राजमाता हृदय से इसी पक्ष की है। २० जून को सब सन्देह दूर हो गये। उस दिन सर्कारी सिपाहियो ने लिगेशनों पर गोले चलाये। चीन ने पृथ्वी के सभी प्रधान राष्ट्रों से एक साथ ही लड़ने की ठान ली। एक घोषणा द्वारा प्रजा को यह आज्ञा दी गयी कि सब विदेशी मार डाले जायँ। तीन कर्म्मचारियों ने इस आज्ञा के शब्दों को कुछ नरम बनाना चाहा। इसी अपराध में उनको फांसी दे दी गयी। बिचारे सम्राट इन बातों के विरुद्ध थे पर उनकी सुनता ही कौन था।

यह बातें तो पेकिंग में हो रही थीं। उधर १० जून को ऐड्मिरल सेमोर २००० सैनिक लेकर तेन्जिन से पेकिंग की ओर बढ़े। इनमें अंग्रेज रूसी, जर्मन, इटालियन, जापानी, अमेरिकन, फ्रेंच और आस्ट्रियन सभी थे। यह लोग अधिक न बढ़ सके और फिर तेन्जिन लौटना पड़ा। उधर चीनियों ने नगर को घेर लिया। इस पर सेमोर ने निकटस्थ पाइहो नदी के मुहाने के ताकू किलों के अध्यक्ष को लिखा कि किले खाली कर दिये जायें। उस ने नहीं माना। पर २७ जून को किला और १४ जुलाई तक नगर भी इन लोगों के हाथ में आ गया।

अब इन लोगों को चाहिये था कि शीघ्र ही मिल कर पेकिंग पर बढ़ते पर आपस के झगड़ों ने ऐसा न करने दिया और बहुत सा समय यों ही नष्ट हुआ। किसी २ भांति ४ अगस्त को सर आल्फ्रेड गेसेली

तेन्जिन से निकले और १३ अगस्त को पेकिंग के पास पहुँचे। यहा सभी जातियों ने पेकिंग में प्रथम घुसने का प्रयत्न किया परन्तु सबसे पहिले कुछ सिक्खों के साथ सर आल्फ्रेड ही घुसे। १४ अगस्त को लिगेशनों का जो अब तक घिरे हुए थे, छुटकारा हुआ। फिर तो चीनियोंसे खूब ही बदला लिया गया। उधर १६ अगस्त को सम्राट्, राजमाता तथा अन्य प्रधान दर्बारी पेकिंग छोड़ कर सिंगनपू नामक नगर को चले गये।

सितम्बर मे कौण्ट वानडर सी २०,००० जर्मन सेना लेकर आये। इनकी इच्छा थी कि चीन के भीतर प्रवेश किया जाय पर अन्य राष्ट्र, विशेषत इगलेण्ट और जापान ने इसका विरोध किया। उनको भय था, और यह भय ठीक था, कि इतने बड़े देश में जहा रेल नहीं, तार नहीं, रसद का प्रबंध नहीं, कूच कर निकलना कठिन होगा। अत पेकिंग के आगे सेनाएँ नहीं बढ़ी। इस अवसर पर जर्मनों ने एक बड़ा ही नीच काम किया। पेकिंग वेधालय मे कई अत्यन्त प्राचीन ज्योतिर्यन्त्र थे। उनको यह लोग जर्मनी उठा ले गये।

अब इन लोगों ने यह विचार करना आरम्भ किया कि किन शर्तोंपर सन्धि हो। अन्त में ५ प्रधान आरम्भिक शर्तें निश्चित हुईं और यह स्पष्टतया कह दिया गया कि पहिले चीनी इनको स्वीकार करलें फिर और बातें पाछे देखी जायँगी। वह ५ शर्तें यह हैं —

(१) बैरन वान केटेलर (जर्मन राजदूत) और मि सुगियामा (जापानी लिगेशन का चैंसलर) की मृत्यु के लिये निर्दिष्ट रूप के समुचित स्मारक और जहाँ २ विदेशियों की कब्रें तोड़ी गयी हों वहाँ २ प्रायश्चित्त रूपी स्मारकों का बनवाया जाना।

(२) जिन लोगों के उभारने या प्रोत्साहन से यह घटनाएँ हुईं उनको कठोरतम दण्ड दिये जायँ। अपराधियों के नाम मित्रराष्ट्रों (अर्थात् इगलैण्ड, जापान, जर्मनी आदि) द्वारा चुने जायँगे।

(३) उपयुक्त और न्याय्य अर्थदण्ड—यह रुपया उन राष्ट्रों,

भाओं और व्यक्तियों में बाँटा जायगा जिनको क्षति पहुँची है।

(४) चीन म बाहर से शस्त्रों और सैनिक सामग्रियोंका आना बन्द कर दिया जायगा, पेकिंग के जिस भाग में लिगेशन हैं उसकी किलेबन्दी हो जायगी और उसमें तत्तद्राष्ट्र की स्थायी पल्टनें रहेंगी, पेकिंग से समुद्र तक जितने किले ह वह तोड़ दिये जायँगे और मार्ग म जो २ स्थान सैनिक दृष्टिसे उपयोगी प्रतीत होंगे वहाँ २ मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ रहेंगी।

(५) चीन में स्थान २ पर दो वर्ष तक इस विषय की घोषणायें लगा दी जायें कि जो मनुष्य विदेशियों के विरुद्ध आन्दोलन करेगा उसको फाँसी दी जायगी और जिस वाइसराय या गवर्नर के प्रान्त में इस प्रकार का कोई विद्रोह होगा वह उसके लिये उत्तर दाता माना जायगा।

१४ जनवरी १९०१ को चीन के प्रतिनिधियोंने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया। अब ब्योरे के निश्चय करने का समय आया। मित्र राष्ट्रों में आपस में बड़ा मतभेद था। रूस चाहता था कि चीन उसे मचूरिया में कुछ विशेष स्वत्व दे दे, इसलिये वह बहुत सी बातों में चीन का पक्ष लेता था।

जब यह निश्चय होने लगा कि प्रधान अपराधी कौन २ हैं तो रूस के अनुरोध से राजमाता या अन्य किसी बड़े आदमी का नाम नहीं लिया गया। बिचारे सामान्य आफिसरों के सिर ही आपत्ति आई—कोई फाँसी चढ़ाया गया, किसी को आत्महत्या करनी पड़ी, कोई पदच्युत कर दिया गया। इसी प्रकार जब यह निर्णय होने लगा कि जिन लोगों को क्षति पहुंची है उनको क्या दिया जाय तो रूस चुपचाप रहा क्योंकि चीन में रूस के पादरियों को हानि पहुंची ही न थी। इस प्रश्न पर भी बड़ा वादविवाद रहा कि चीन को क्या अर्थदण्ड दिया जाय। तमाशे की बात तो यह थी कि जर्मनी जो बहुत पीछे सहायता दे सका और इटली जो बहुत ही कम सहायता दे सका सबसे बढ़कर बोलते थे। अन्त में ४५०,०००,००० तेल [४५ करोड़ तेल १ अरब ३५ करोड़ रुपया] पर सब सम्मति हुई।

यह धन एक साथ तो दिया नहीं जा सकता था। इस लिये यह निश्चय किया गया कि जब तक यह पूरा न दे दिया जाय तब तक चीन की नमक, चुंगी, आदि की आमदनी मित्रराष्ट्रों के निरीक्षण में रहे।

जर्मन राजदूत की मृत्यु के लिये यह प्रायश्चित निश्चित हुआ कि चीन सम्राट् के सौतेले भाई राजकुमार चुन जर्मनी जाकर कैसर से क्षमा मांगे। जब यह जर्मनी पहुँचे तो इनसे कहा गया कि तुमको कैसर के सामने काउटाउ करना होगा। काउटाउ एक प्रकार का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम है। चीन में जो मनुष्य सम्राट के पास जाता उसे काउटाउ करना पड़ता था। पर यूरोपियन ऐसा नहीं करते थे। चीनी भी इस बात पर अड़ गये। उनका कहना था कि जब यूरोपियन हमारे सम्राट् के सामने काउटाउ नहीं करते तो हमारा प्रतिनिधि किसी यूरोपियन नरेश के सामने क्यों काउटाउ करे। अन्त में जर्मनी को यह बात माननी पड़ी और ८ वीं सितम्बर को कैसर से क्षमा प्रार्थना भी हो गया।

७ सितम्बर को संधि पर एक ओर दो चीनी प्रतिनिधियों और दूसरी ओर इंगलैन्ड, जर्मनी, फ्रान्स, रूस, जापान, अमेरिका, आस्ट्रिया-हंगरी, इटली, हालैंड, बेल्जियम और स्पेनके प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर कर दिये। १७ सितम्बर को सिवाय लिगेशन विभाग के गारद के और सब विदेशी सिपाहियों ने पेकिंग खाली कर दिया। लगभग एक महीने पीछे सम्राट् आदि पेकिंग लौट आये।

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि इन सब बातों का चीनी प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ा होगा। विदेशियों पर तो क्रोध था ही, जिन्होंने कि पादरियों की मृत्यु का बहाना लेकर राजनैतिक लाभ उठाया पर उस चीन सरकार को क्या कहा जाय जिसने यह सब होने दिया? पहिले तो मञ्चुओं को चाहिए था कि प्रारम्भ में ही इतनी दृढ़ता दिखाते कि पादरियों का प्रभाव इतना न बढ़ने पाता कि वह उपद्रव करा सकें। फिर जब दो चार पादरी मारे गये तभी प्रबन्ध करके उपद्रव की वृद्धि रोकनी थी, जब यूरो-

पियन राष्ट्रों की दुरिच्छा का पता लग गया तो अपनी दुर्बलता को जानते हुए बाक्सरों को दबाना था जिससे कि यूरोपियनों को चीन मे घुसने का बहाना ही न मिलता, यदि लड़ने ही की ठानी थी तो पहिले से तदनुरूप सामग्री और सेना प्रस्तुत कर रखनी थी। यह कैसा प्रबध था कि सारे संसार से लड़ने का तो बीड़ा उठाया और अपने पास न सेना है, न सेनानी है, न सामग्री है, न शिक्षा है। सारी पृथ्वी से लड़ने चले और दो महीने भी न ठहर सके, उलटे राजधानी छोड़ कर भागे और देश का नाम व्यर्थ कलंकित किया। मन्चुओं का तो कुछ बिगड़ा नहीं पर प्रजा का अपमान अलग हुआ, उसपर ४५०,०००,००० तेल का ऋण गिर चढ़ा।

इन बातों ने प्रजा के हृदय को सन्ताप, ग्लानि, क्रोध और अश्रद्धा से भर दिया। इसके साथ ही मन्चुओं का जो कुछ रोब और भय था वह भी जाता रहा। लोगों के हृदय मे इस भावना ने घर कर लिया कि ऐसा दुर्बल और उन्नति विरोधी शासन जितना ही शीघ्र दूर किया जाय उतना ही अच्छा है।

(ग) जापान का अभ्युत्थान और उसकी अनुचित महत्वाकांक्षा।

जापान का अभ्युत्थान एक साधारण घटना नहीं प्रत्युत एक चमत्कारिक विषय है। इतने थोड़े काल में ऐसी अभूतपूर्व उन्नति करके जापान ने सभ्य जगत को आश्चर्य में डाल दिया है। योरप के राष्ट्र जो एशिया के अन्य देशों की भांति उसे भी अपने जेब में, या कम से कम पैर के नीचे, डालना चाहते थे आखें मलते ही रह गये। बूढ़े एशिया के रगों में जापान का नाम सुन कर फिर से रक्त का सञ्चार होने लगा। कोई मंगोलियन के नाते, कोई बौद्ध के नाते, कोई कुछ नहीं तो एशियाई के नाते, सभी किसी न किसी सम्बन्ध से उसे अपना भाई, मित्र, हितेच्छु और सहायक मानने लगे।

जापान एक एशियाई देश है अत उसके साफल्य पर सारे एशिया-

वासियों को हर्ष और गर्व होना स्वाभाविक ही है परन्तु यह कहना कठिन है कि लोगों ने उससे जो २ आशाएँ की थीं या की हैं वह कहा तक ठीक था या है। जापान के प्रति लोगों की जो श्रद्धा है उसको देखते हुए उस के विरुद्ध कुछ कहना या लिखना दुःसाहस सा प्रतीत होता है। पर इतिहास लेखक का कर्तव्य है कि वह सत्य के, अर्थात् जिसे वह सत्य समझता है, प्रकट करने मे पक्षपात से काम न ले। सम्भव है मेरा विश्वास भ्रान्त हो, ईश्वर करे ऐसा ही हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि जापान ने अपने यूरोपियन गुरुओं से बहुत सी बुरी बातें सीखी है, जिनमें लोभ का स्थान प्रथम है। इस लोभ के वशीभूत होकर उसने उस उदारता को तिलाञ्जलि दे दी है जो प्राच्य जातियों का एक भूषण है। क्रम से कम चीन के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त सकीर्ण और घृणोत्पादक हुआ है।

जापान के अभ्युदय को देख कर पहिले तो चीन को विस्मय हुआ फिर हर्ष और उत्साह उत्पन्न हुए। परन्तु जापान के व्यवहार ने इन सब सद्भावों पर पानी फेर दिया। जापान की चेष्टाओं से यह प्रतीत हो गया कि उसकी इच्छा चीन का सरक्षक बनने की थी।

अन्य [अर्थात् यूरोपीय] जातियों की भाँति जापान ने चीन को दबाने के जो २ प्रयत्न किये उनका वर्णन तो इसी अध्याय के अगले खण्ड में होगा। इस खण्ड मे हम जापान की अनुचित महत्त्वाकाँक्षा और दुर्नीति का एक ऐसा उदाहरण देंगे जो जापान के नाम को चिरकलङ्कित करने के लिये पर्य्याप्त है।

चीन के सरक्षित राज्यों मे कोरिया का स्थान बहुत ऊचा था। जितना कोरिया पर चीनी प्रभाव पड़ा था उतना और किसी देश पर नहीं पड़ा था। पर दुर्भाग्यवश यह देश जापान के निकट था। उधर रूसी साम्राज्य भी पास ही था और रूस जापान दोनों की कुदृष्टि इस पर पड़ रही थी और दोनों ही उसे हड़पने का अवसर ढूढ रहे थे।

ऐसी दशा में लिहुगचाग ने उसकी रक्षा का एक उपाय सोचा। उन्होंने

सोचा कि यदि कई राष्ट्रों में कोरिया की गरक्षकता का भार बाँट दिया जाय तो स्यात् वह बच जाय। चीन के अधीन होने से अभी तक कोरिया किसी परराष्ट्र से किसी प्रकार की पृथक् सन्धि नहीं कर सकता था। पर स० १६-६ [सन् १८८२] में लि के समझाने से चीन सर्कार ने कोरिया को स्वतन्त्र व्यापारी सन्धि करने का अधिकार दे दिया। इस अनुज्ञा के अनुसार इंगलैण्ड, जर्म्मनी और अमेरिका से उसी साल सधियाँ हुईं। लि का अनुमान यह था कि यदि कोरिया पर कभी कोई आपत्ति आवेगी तो यह तीनों राष्ट्र उसका पक्ष लेंगे।

कोरिया के लोग जापान से स्वभावत असन्तुष्ट थे। इन सन्धियों के पीछे उनका साहस भी कुछ बढ़ गया। जापान के विरोधियों में कोरिया के महाराज के पिता लि शिह यिंग प्रमुख थे। महाराज के अल्पवयस्क होने के कारण यही राज का प्रबन्ध करते थे। इनके उभारने से लोगों ने जापानी राजदूतों पर आक्रमण किया और उनके निवासस्थान में आग लगा दी। जापानी लड़ते भिड़ते चेमल्पो बन्दर पहुंचे और वहा से जापान चले गये।

इस पर जापान ने एक सेना कोरिया भेजी। इधर लि ने अपने एक विश्वासपात्र माचिएन चुग को भेजा। किसी तरह दोनों पक्षों में समझौता हो गया और ५००,००० [जिसमें से पीछे ४००,००० छोड़ दिया गया] डॉलर दण्ड देकर कोरिया के प्राण बचे। लि शिह यिंग कैद करके चीन भेज दिया गया।

दो वर्ष पीछे फिर झगड़ा खड़ा हुआ। लि शिह यिंग चीन से छूट कर फिर कोरिया आ गया था। उसने आते ही फिर जापान के विरोधियों का नेतृत्व लिया। जापानियों को फिर पहिले की भाँति भागना पड़ा और फिर एक चीनी और एक जापानी सेना कोरिया पहुंची। दोनों दल अपने को कोरिया का सरक्षक कहते थे। अन्त में किसी भाँति सधि हो गयी। उसकी मुख्य धाराओं का अंग्रेजी रूप यह है।

"The Said respective Powers mutually agree to invite the king of Korea to instruct and drill a Sufficient force that she may herself assure her public security and to invite him to engage into his service an officer or officers from amongst those of a third Power who shall be entrusted with the instruction of the said force.

In case of any disturbance of a grave nature occurring in Corea, which necessitates the respective countries or either of them to send troops to Korea, it is hereby understood that they shall give, each to the other, previous notice in writing of their intention so to do and that after the matter is settled, they shall withdraw their troops and not further station them there."

"उक्त दोनों राष्ट्र (अर्थात् चीन और जापान) आपस में यह निश्चय करते हैं कि कोरिया के महाराज से यह कहा जाय कि वह एक पर्य्याप्त सेना को कवायद कराकर सुशिक्षित बनावें जिससे कि कोरिया अपनी रक्षा का स्वयं प्रबन्ध कर सके और उनसे यह भी कहा जाय कि इस सेना के शिक्षण के लिये किसी तृतीय (अर्थात् चीन जापान से भिन्न) राष्ट्र के एक या अधिक आफिसर नौकर रक्खें। यदि कोरिया में कोई बड़ी अशान्ति फैले जिसके कारण कि एक या दोनों राष्ट्रों को कोरिया में सेना भेजने की आवश्यकता प्रतीत हो, तो वह ऐसा करने के पहिले एक दूसरे को लिख कर सूचना दे देंगे और काम पूरा हो जाने पर अपनी सेना वहाँ से हटा लेंगे।"

इन शब्दों पर विचार करने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि अब

कोरिया पर चीन का एक मात्र अधिकार नहीं रहा वरन् जापान भी उस का भागी हो गया।

इस के पीछे लगभग ८ वर्ष तक शान्ति रही पर यह शान्ति केवल दिखावे मात्र की थी। भीतर २ आग जल रही थी। जापानी चाहते थे कि कोरिया के राज प्रबन्ध में कुछ ऐसे परिवर्तन हो जायँ जिनसे वह जापान के प्रभाव क्षेत्र में पूर्णतया आ जाय। चीनी और कोरियावासी इसका विरोध करते थे।

यह विरोध तो फैल रहा ही था। किसी कारण से सं० १९५१ (सन् १८९४) में चीन ने कुछ सिपाही कोरिया भेजे, यह संधि के विरुद्ध बात थी क्योंकि जापान को पहिले सूचना नहीं दी गयी थी। जापान इस बात पर स्वभावतः रुष्ट हुआ। परिणाम यह हुआ कि चीन जापान में कुछ युद्ध छिड़ गया।

यह युद्ध चीन के लिये अत्यन्त हानिकारक और जापान के लिये अत्यन्त लाभ दायक निकला। सारे जगत् में जापान की प्रतिष्ठा फैल गयी और चीन का गौरव गिर गया। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। जापानी तो दत्तचित्त होकर उन्नति कर रहे थे और चीनी सो रहे थे। ऐसी दशा में होता ही क्या।

२५ जुलाई और १७ सितम्बर के बीच में चीन को असान और पिङ्गयाङ्ग की स्थल और यालू की जल-युद्ध में हार खानी पड़ी। २१ नवम्बर को पोर्ट आर्थरका किला जो बड़ा दृढ़ माना जाता था जापानियों के हाथ में चला गया। चीन सर्कार ने इन बातों के लिये लि को दोषी ठहराया और उनका बहुत कुछ अपमान किया गया, पर जापानियों की बढ़ती देख कर संधि करने की आवश्यकता शीघ्र ही प्रतीत होने लगी।

चीन सर्कार ने अपनी ओर से मिस्टर डेट्रिंग नामक एक सज्जन को भेजा, पर उनको पूर्ण अधिकार न थे इसलिये जापानियों ने उनको लौटा दिया। नियम यह है कि जब दो राष्ट्रों में सन्धि होती है तो दोनों

के प्रतिनिधियों को पूर्ण अधिकार रहता है कि वह जिन शर्तों पर चाहें सन्धि करें। यह अधिकार चीन सर्कार ने अपने प्रतिनिधि को दिया नहीं था। फिर दो चीनी भेजे गये। पर उनके अधिकार भी अपूर्ण थे इस लिये वह भी लौटाये गये। अन्त में लि भेजे गये और १७ अप्रैल १८९५ (स० १९५२) को सधि हो गयी, इसके अनुसार कोरिया पर से चीन का आधिपत्य उठ गया। फॉरमोसा और पेस्केडोर टापू और लियाओतुग प्रायद्वीप जापान को मिले और चीन को २००,०००,००० तेल का अर्थ दण्ड देना पड़ा।

चीन लौट कर लि ने फ्रास, जर्मनी और रूसको उभारा। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान को लियाओतुग प्रायद्वीप लौटा देना पड़ा।

अभी तक जितनी बातें लिखी गयी हैं उनमें जापान की कोई बड़ी नीचता नहीं टपकती। उसके उद्देश्य चाहे कैसे रहे हों, अन्य महत्वकाक्षी देशों के उद्देश्यों से बुरे न थे। लड़ाई भी उसने जब २ की, दूसरों के छेड़ने पर ही की। यह सब सत्य है, पर इसका कारण है। जापान को चीन का डर था। इसके साथ ही वह ससार के सामने चीन और कोरिया को ही दोषी ठहराना चाहता था, इसीलिये चुपके २ ऐसी चालें चलता था जिनसे कि कुढ कर चीनी या कोरिया वाले कुछ उपद्रव कर बैठें और उसको लड़ने का अवसर मिले। पर इस युद्ध के पीछे यह बातें जाती रहीं। चीन का डर रहा ही नही, जापान खूब खुल खेला। आगे जिन घटनाओं का उल्लेख है उनसे उसकी निन्दनीय तृष्णा का परिचय मिलेगा।

जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं इस सधि की (जिसको शिमोनोसेकी सधि कहते हैं) एक धारा के अनुसार कोरिया पर से चीन का सारा अधिपत्य उठ गया और चीन ने कोरिया को स्वतत्र स्वीकार कर लिया। अब देखिये कि कोरिया को अपनी इस नयी स्वतत्रता का क्या फल मिला।

कोरिया के महाराज और महारानी दोनों ही जापान के विरुद्ध थे।

इनम महारानी तो जापान म बहुत ही बुरा मानती थी। सधि क थोड़े ही दिन पीछे (८ अक्तूबर १८६६) को कुछ जापानी सिपाही महल में घुस गये और उन्होंने महारानी को मार डाला। जैसे इस विषय की जाँच की गयी तो यह सिद्ध हो गया कि इन लोगों ने जापानी राजदूत वाइकौंएट म्योइरा के कहने से ऐसा काम किया, पर जापान सरकार ने म्योइरा को किसी प्रकार का दण्ड देना तो दूर रहा उलटे उनकी पदवृद्धि की।

जो लोग जापानियों की वीरता और उदाराशयता की बड़ी प्रशंसा करते हैं उनको यह घटना स्मरण रखना चाहिये।

एक कण्टक तो दूर हो ही गया, स्वयं महाराज दूसरे कण्टक थे। वे क़ैद कर लिये गये। पर चार महीने के पीछे निकल भागे और रूसी राजदूत के निवास स्थान म शरण के लिये गये। वहाँ से उन्होंने एक घोषणा द्वारा महारानी के हत्यारों के दोष को प्रकट किया।

६ मार्च को रूस जापान में एक समझौता हो गया जिसके द्वारा कोरियों में तार का प्रबन्ध जापान को मिला और रूस जापान दोनों ने कोरिया के शासन, सेना व्यय, आदि में सुधार कराने की इच्छा प्रकट की। जब इस बात की सूचना कोरिया को दी गयी तो उसके परराष्ट्र मन्त्री (जो मन्त्री अन्य राष्ट्रों से पत्र व्यवहारादि करता है) ने स्पष्ट लिखा कि यह बात आप लोगों ने बिना कोरिया से पूछे निश्चित कर ली है अत हम इनको मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। पर दुर्बल की धमकियों से होता ही क्या है। उसके थोड़े ही दिनों पीछे कोरिया को इच्छा न होते हुए भी एक जापानी कम्पनी से २० लाख यन ऋण लेना पड़ा। •

फिर सात वर्ष तक, अर्थात् सं० १९६७ (सन् १९०४) तक कोई महत्त्व की बात नहीं हुई। यह साल कोरिया के लिये अत्यन्त दु खप्रद हुआ, क्योंकि इसी साल उसके स्वतन्त्र जीवन का अन्त हो गया।

१० फर्वरी १९०४ को जिस आज्ञा पत्र द्वारा जापान के सम्राट् ने रूस से युद्ध छेड़ा उसमें स्पष्टतया लिखा था " The integrity of

के प्रतिनिधियों को पूर्ण अधिकार रहता है कि वह जिन शर्तों पर चाहें सन्धि करें। यह अधिकार चीन सर्कार ने अपने प्रतिनिधि को दिया नहा था। फिर दो चीनी भेजे गये। पर उनके अधिकार भी अपूर्ण थे इस लिये वह भी लौटाये गये। अन्त में लि भेजे गये और १७ अप्रैल १८६५ (स० १६५२) को सधि हो गयी, इसके अनुसार कोरिया पर से चीन का आधिपत्य उठ गया। फ़ॉरमोसा और पेस्केडोर टापू और लियाओतुग प्रायद्वीप जापान को मिले और चीन को २००,०००,००० तेल का अर्थ दण्ड देना पड़ा।

चील लौट कर लि ने फ्रांस, जर्मनी और रूसको उभारा। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान को लियाओतुग प्रायद्वीप लौटा देना पड़ा।

अभी तक जितनी बातें लिखी गयी हैं उनसे जापान की कोई बड़ी नीचता नहीं टपकती। उसके उद्देश्य चाहे कैसे रहे हो, अन्य महत्वकांक्षी देशों के उद्देश्यों से बुरे न थे। लड़ाई भी उसने जब २ की, दूसरों के छेड़ने पर ही की। यह सब सत्य है, पर इसका कारण है। जापान को चीन का डर था। इसके साथ ही वह ससार के सामने चीन और कोरिया को ही दोषी ठहराना चाहता था, इसीलिये चुपके २ ऐसी चालें चलता था जिनसे कि कुढ कर चीनी या कोरिया वाले कुछ उपद्रव कर बैठें और उसको लड़ने का अवसर मिले। पर इस युद्ध के पीछे यह बातें जाती रहीं। चीन का डर रहा ही नहीं, जापान खूब खुल खेला। आगे जिन घटनाओं का उल्लेख है उनसे उसकी निन्दनीय तृष्णा का परिचय मिलेगा।

जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं इस सधि की (जिसको शिमोनोसेकी की संधि कहते हैं) एक धारा के अनुसार कोरिया पर से चीन का सारा अधिपत्य उठ गया और चीन ने कोरिया को स्वतन्त्र स्वीकार कर लिया। अब देखिये कि कोरिया को अपनी इस नयी स्वतन्त्रता का क्या फल मिला।

कोरिया के महाराज और महारानी दोनों ही जापान के विरुद्ध थे।

अनुमान था कि ऐसे अवसर पर अमेरिका ही दुर्बल जातियों का पक्ष लेगा। परन्तु "दैवो दुर्बल घातक"—परिणाम कुछ न हुआ—उलटे सब से पहिले अमेरिका ने ही जापान के कोरिया सम्बन्धी अधिकारों को स्वीकार किया।

जब जापान को पता लगा कि कोरियावाले अपने बचाव का प्रयत्न कर रहे हैं तो उसने मार्क्विस ईटो को विशेष दूत बना कर भेजा, वह १० नवम्बर को महाराज से मिले। उन्होंने जो २ बात जापान की ओर से कहा उनको सुनकर महाराज ने कहा "मैं मर जाऊँगा पर इन बातों का स्वीकार न करूँगा"। कोरिया का मन्त्रिमण्डल भी जापान की शर्तों का विरोधी था, पर वह कर ही क्या सक्ता था। किसी को रुपये की लालच दी गयी, किसी को धमकी दी गयी, कोई क़ैद कर लिया गया। अन्त में सिवाय प्रधान-मन्त्री और पर-राष्ट्र-मन्त्री के और सब ने अपनी स्वीकृति दे दी और एक सधि पत्र लिखा गया जिसके अनुसार कोरिया जापान की सरक्षकता में आ गया और एक जापानी रेज़िडेएट—जनरल नियुक्त हुआ जिसको कोरिया के शासन के विषय में पूर्ण अधिकार दे दिये गये।

जब प्रजा को इस बात की सूचना मिली तो सनाटा छा गया। सहस्रों मनुष्यों के हस्ताक्षर से एक अर्ज़ी महाराज के पास भेजी गयी कि जापान की शर्तें न मानी जायँ। जनरल राजकुमार मिन यागव्हान ने योरोपीय राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को लिखा। लाखों मनुष्य महल के सामने घुटने टेक कर बैठ गये, महल के भीतर मन्त्री और राजकर्मचारी महाराज के सामने घुटने टेक कर बैठे रहे। यह अवस्था तीन दिन तक रही। तीसरे दिन जापानियों ने सबको बलात् हटा दिया और २६ नवम्बर को महाराज के नाम से प्रजा की अर्ज़ी अस्वीकृत की गयी।

३० तारीख को राजकुमार जनरल व्हान ने आत्महत्या कर ली, वह कोरियन प्रजा के नाम एक पत्र छोड़ गये थे। उसका अँगरेजी रूप इस प्रकार है—

Korea is a matter of grave concern to this Empire" अर्थात् 'कोरिया के स्वातन्त्र्य का इन (अर्थात् जापानी) साम्राज्य को बहुत ध्यान है"। २३ फर्वरी को जापानी गवर्न्मेंण्ट ने लिखा "The Imperial Government of Japan definitley guarantees the independence and territorial integrity of the Korean Empire" अर्थात् "कोरियन साम्राज्य के स्वातन्त्र्य और अखण्डित भूपतित्व के लिये जापानी साम्राज्य स्पष्ट वचन देता है"

इसके चार महीने पीछे, अर्थात् जून में, कोरिया का गला घोंटने का एक प्रबन्ध किया गया। मिस्टर नागामोरि नामक एक जापानी सज्जन थे। कोरिया में जितनी परती भूमि थी (वह भूमि जिसमें खेती नहीं होती) उस सबका उनको ५० वर्ष के लिये पट्टा लिखवा दिया गया। उनको यह अधिकार दे दिया गया कि ५० वर्ष तक इस भूमि से चाहे जैसे लाभ उठावें और यदि ५० वर्ष के पीछे कोरिया उनके नाम फिर पट्टा न लिखना चाहे तो इस ५० वर्ष में उनका जो कुछ रुपया लगा हो वह सब ५ रुपये सैकड़े ब्याज के साथ उनको दिया जाय।

इसके दो महीने पीछे, अर्थात् अगस्त में कोरिया के सद्य प्राप्त स्वातन्त्र्य ने एक नया रूप दिखलाया। अभी तक अन्य स्वतन्त्र देशों की भाँति कोरिया के प्रतिनिधि या राजदूत योरप और अमेरिका के स्वतन्त्र राष्ट्रों में रहते थे और उन राष्ट्रों के प्रतिनिधि कोरिया में रहते थे। अब जापान ने कोरिया से कहा कि वह सब बाहरी राजदूतों को लौटा दे और अपने राजदूतों को बुला ले, क्योंकि जापान उसका संरक्षक बन कर उसका भी सब काम सँभाल लेगा। यह भी आज्ञा हुई कि कोरिया की सेना २०,००० से ७,००० कर दी जाय।

इन बातों से स्पष्ट हो गया कि जापान कोरिया को हस्तगत करना चाहता था। घबराकर महाराज ने एक दूत अमेरिका भेजा, क्योंकि उनका

न्याय क्रोध का कुछ शान्त करना चाहता हूँ।"

मेरी मृत्यु का तत्काल स्यात् कुछ भी फल न होगा और न मेरी मृत्यु के पीछे मेरे विषय में कुछ कहने सुनने की आवश्यकता है पर मुझे विश्वास है कि आगामी अवस्था में, नाना प्रकार के कष्ट हमारी जाति और हमारे देश के लोगों को नष्ट कर देंगे।

परराष्ट्रों के मन्त्रियों (अर्थात् योरोप अमेरिका आदि के राजदूतों) को जापान का उद्देश्य निःसन्देह ज्ञात रहा होगा। मुझे आशा है कि वह लोग अपने राष्ट्रों और अपनी प्रजाओं को हमारे राज्य की दशा बता लावेंगे और मेरे अभागे देश के साथ कुछ न्याय किया जायगा।

यह नहीं समझना चाहिये कि हम लोग स्वदेश प्रेमी नहीं हैं। हम हैं। यदि परराष्ट्रों के मन्त्री कोरिया की पुनः स्वातन्त्र्यप्राप्ति के लिये कुछ प्रयत्न करेंगे तो मैं उनको स्वर्ग से धन्यवाद दूंगा।"

यह एक सन्तप्त देशभक्त हृदय का उद्गार है पर इससे होना क्या था। किसी ने कुछ भी न सुना, मानों सारे राष्ट्रों को साँप सूँघ गया था।

दिसम्बर को कोरिया के परराष्ट्रमन्त्री पाक चे सुन ने आत्महत्या करनी चाही पर उसके प्राण बच गये और कुछ दिन अस्पताल में रहकर अच्छा हो गया।

महाराज विचारे कैद तो थे ही, नाम को अब भी राजा थे। किसी प्रकार प्रसिद्ध सम्वाद-दाता मि० डगलस स्टोरी द्वारा उन्होंने २६ जनवरी, १९०६ को एक पत्र प्रकाशित किया, जिसके शब्द यह हैं —

I H M the Emperor of Korea did not sign or agree to the Treaty signed by Mr Hayashi and Pak Che Sun on Nov 17, 1905

II His Majesty objects to the details of the Treaty as published through the tongues of Japan

"Through my inability in the Service of the Empire the present threatening state of Affairs has resulted I am killing myself, my objects in doing this being to demonstrate my sense of gratitute to the Emperor and to allay in part the just resentment of my twenty million compatriots

My death may have no immediate result and after my death nothing need be said about me, but I am sure that under the new state of Affairs, trouble will destroy our nation and the people of our land The foreign ministers must have known what Japan proposed to do I hope that the foreign ministers will make known to their Governments and to their people the condition of our Empire and I hope that some measure of justice may presently be meted to my unhappy country

It must not be thought that our people are not patriotic We are If the foreign ministers can do anything to restore freedom and independence to the people of Korea, I shall send them my grateful thanks from heaven"

"मैं देश की सेवा न कर सका, इसी लिये यह भयंकर अवस्था उपस्थित हुई। मैं आत्महत्या कर रहा हूँ। मैं ऐसा करके महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता दिखलाना चाहता हूँ और अपने दो करोड़ देशवासियों के

३, सम्राट ने कोरिया के स्वाम्य (स्वातन्त्र्य) को घोषित किया है और उन्होंने वह स्वाम्य किसी अन्य राष्ट्र के हाथ में नहीं दे दिया है।

४, जापान ने जो सन्धि प्रकाशित की है उस में (भी) कोरिया के पर-राष्ट्र सम्बन्धी विषयों का (ही) कथन है (तात्पर्य यह कि कोरिया के समस्त परराष्ट्र सम्बन्ध जापान के अधीन रहेंगे) सम्राट् ने जापान को कोरिया के भीतरी शासन में हस्तक्षेप करने का कभी अधिकार नहीं दिया है।

५, सम्राट् ने जापानी रेजिडेण्ट-जेनरल की नियुक्ति की कभी स्वीकृति नहीं दी, उन्होंने किसी ऐसे जापानी की नियुक्ति की सम्भावना की भी कल्पना नहीं की जो कोरिया में आधिपत्य (या साम्राज्य के अधिकार) रखता हो।

६, सम्राट् पृथ्वी के बड़े राष्ट्रों से प्रार्थना करते हैं कि वह मिल कर यथाविधिया में अधिक से अधिक ५ वर्ष के लिये कोरिया के संरक्षक बन जायँ"।

इस कातर आर्त्तनाद का रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा। जापान ने कह दिया कि यह बातें कोरिया के महाराज की कही हुई हैं ही नहीं।

हाँ एक परिणाम हुआ। अभी तक तो सम्राट् बाहर भी निकलने पाते थे पर अब वह महल में ही कैद कर दिये गये और महल पर जापानियों का पहरा बैठा दिया गया। कोरियन राजकर्म्मचारी निकाल दिये गये और उनके स्थान में जापानी रक्खे गये। महाराज को किसी यूरोपियन, अमेरिकन या कोरियन से मिलने की मनाही हो गयी। बहुत सी भूमि प्रजा से इस बहाने छीन ली गयी कि उसकी सैनिक कामोंके लिये आवश्यकता है और फिर जापानियों को दे दी गयी। मि॰ ऐंङ्गस हेमिल्टन अपनी पुस्तक 'प्राब्लेम्स आव दि मिडिल ईस्ट' (Angus Hamilton, Problems of the Middle East) में लिखते हैं "In this way no less than 1000 villages were dis possessed

III His Majesty has proclaimed the sovereignty of Korea and denies that he has by any act made that sovereignty over to any foreign power

IV Under the Treaty as published by Japan, the only terms referred to, concern the internal affairs with Foreign Powers. Japan's assumption of the control of Korean Internal Affairs never has been authorized by H M the Emperor of Korea

V His Majesty never consented to the appointment of a Resident general from Japan, neither has he conceived the possibility of the appointment of a Japanese who should exercise Imperial powers in Korea

VI His Majesty the Emperor of Korea invites the great Powers to exercise a joint protectorate over Korea for a period not exceeing five years with respect to the control of Korean foreign affairs

१ "जिस सन्धि पर १७ नवम्बर १९०५ को मि० हयाशी (जापानी प्रतिनिधि) और पाकचे सुन (कोरियन परराष्ट्रमन्त्री) ने हस्ताक्षर किया उस पर न तो कोरिया के सम्राट् ने हस्ताक्षर किया, न वह उस से सहमत हैं।

२, जापान द्वारा सन्धि का जो ब्योरा प्रकाशित हुआ है उससे वह सहमत नहीं है।

को यह सूचना मिला तो उसने महाराज को यह आज्ञा दी कि वह सिंहासन से उतर जायँ और जापान चलकर जापान नरेश से स्वयं क्षमा माँगे। १७ नवम्बर १६०५ को संधि पर अपने हाथ से हस्ताक्षर करें और राजकुमार याग को कोरिया बुलाकर दण्ड दिया जाय।

महाराज ने यह सब तो कुछ किया नहीं पर २० जूलाई को युवराज को गद्दी देकर आप अलग हो गये।

१ अगस्त को इस भीषण नाटक का अन्तिम दृश्य खेला गया। उस दिन कोरियन सेना तोड़ने का प्रबन्ध हुआ। एक ओर कोरियन सिपाही खड़े किये गये, और दूसरी ओर जापानी सिपाही थे। पहिले आफिसरों की तलवारें ले लीं गयीं, फिर सिपाहियों के शस्त्र ले लिये गये। इतने ही में प्रधान कोरियन आफिसर ने अपने को गोली मारली। इसी पर सिपाहियों को जोश आ गया और उन्होंने अपने २ शस्त्र फिर उठा लिये। पहिले तो जापानियों की कुछ क्षति हुई पर बिचारे कोरियन करही क्या सकते थे। न उनके पास वैसे शस्त्र थे, न तोपखाना था, न शिक्षा थी। थोड़ी ही देर में वह छावनी से गलियों की ओर हटे और फिर परोक्ष हो कर लड़ने लगे। उस समय जैसा कि मि० हेमिल्टन कहते हैं began a carnival of massacre of which the world to day has hardly heard" ऐसा हत्याकाण्ड मचा जिसका जगत ने समाचार ही नहीं पाया। पाता कहाँ से, समाचारोंकी कुञ्जी तो जापान के हाथ में थी। लोगों के घर लूट गये और मनमाना अत्याचार हुआ। लोगों के हाथ पैर ताड़ दिये जाते और फिर वह रस्सी बाँध कर सड़कों में खींचे जाते। उन्मत्त जापानी उनकी दुर्दशा पर हँसते और उनको ठोकर मारते। यह दशा केवल स्यूल (कोरिया की राजधानी) ही में नहीं वरन् चाग जू, यानजू, प्यागयाग, चूचाग आदि कई नगरों में हुई और सभी जगहों में यही बातें हुईं। प्रजा के साथ जो २ अत्याचार किये गये उनके विषय में मि० हेमिल्टन कहते हैं, there were scenes

amid scenes in which pillage, rape and murder were prominent Private rights in the mineral, agricultural and timber lands of the kingdom were treated with equal violence and neither notice nor compensation was given, while monopolies were created over the minor industries of the people " "इस प्रकार एक सहस्र (१०००) गाँव वेदखल कर दिये गये और वेदखलीके साथ मनमानी लूट हुई। लोग मार डाले गये और स्त्रियों का सतीत्व भ्रष्ट किया गया। राज्य के जिन प्रान्तों में खनिज पदार्थ मिलते हैं, खेती अधिक होती है या लकड़ी मिलती है उनमें प्रजा के स्वत्वों के साथ इसी प्रकार बलात्कार किया गया। न तो सूचना दी गयी न छीन लेने पर कुछ रुपया दिया गया। प्रजा के छोटे २ व्यापारों पर एकाधिकार स्थापित कर दिया गया।" *

प्रजा इन अत्याचारों से घबरा उठी। उन दिनों कोरिया पर जापान का १ करोड़ तीस लाख यन का ऋण था। लोगोंने समझा कि स्यात् इस रुपये के देने से प्राण बच जायँ, इस लिये आपस में चन्दा करना आरम्भ किया। पर यह उनकी भूल थी। जापान की समुन्दर-सोख प्यास इस बूँद से कहाँ तृप्त होने वाली थी।

महाराज ने भी एक अन्तिम प्रयत्न किया। उन्होंने अपने पितृव्य राजकुमार याग ई यि को हेग भेजा। हेग हालैण्ड की राजधानी है। यहा योरप की अन्तर्जातीय सभा बैठ कर सारी पृथ्वी के जटिल राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करती थी। महाराजने सोचा कि इस सभा के सामने पुकार करने से कोई तो सुनेगा, पर कुछ भी न हुआ। हाँ, जब जापान

* एकाधिकार इसे कहते हैं कि किसी एकही व्यक्ति को उस व्यापार के करने का पूर्ण अधिकार मिल जाय और दूसरा कोइ उसे न कर सके।

उन्हों ने देख लिया कि ऐसी सरकार प्रजा की हानि करने में ही समर्थ है पर प्रजा का मान रक्षा और स्वत्व रक्षा करने का न तो उसकी इच्छा है और न शक्ति, अतः अपना काम अपने हाथों ही करना होगा। इस विचार ने चीनी जाति में आशा, उत्साह और कर्म्मपरता का सञ्चार किया।

(ग) चीन और परराष्ट्र।

ऊपर के दो प्रकरणों से भी इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि चीन का परराष्ट्रों के साथ, या यों कहिये कि परराष्ट्रों का चीन के साथ कैसा व्यवहार रहा है। परन्तु इस अध्याय में इस विषय का किंचित सविस्तार वर्णन करना आवश्यक है, इस लिये हम पर राष्ट्रों का पृथक पृथक लेंगे।

सब से पहिले स० १५७४ (सन् १५१७) में पुर्तगाल वाले चीन गये थे। उनके पीछे सन् १५७६ में स्पेन वाला और सन् १५६८ में डच लोगों से चीन वालों का सामना हुआ। आरम्भ में तो इनसे बहुत लड़ाई झगड़े रहे पर पीछे से इनका प्रभाव बहुत कम हो गया। क्योंकि इनकी शक्ति ही कम हो गई। अतः इनका वर्णन विस्तार के साथ करना अनावश्यक है।

इंगलैण्ड।

डच लोगों के कुछ ही पीछे अंग्रेज चीन पहुँचे, पर आरम्भ में उनकी परिस्थिति में कोई विशिष्ट बात न थी। चीनी उनको डच समझते थे। सन् १६८४ में उन को कैण्टन में कोठी बनाने और व्यापार करने का स्वत्व मिला। परन्तु इसके पीछे लगभग १५० वर्ष तक कोई महत्व की बात नहीं हुई।

इस बीच में अफ़ीम का व्यापार बढ़ता जाता था। सन् १६८४ तक २०० पेटी से अधिक अफ़ीम चीन नहीं जाती थी। पर १८२० में पेटियों की संख्या ४००० तक पहुँच गयी। बात यह थी कि पहिले तो अफ़ीम औषधि के नाम से जाती थी। पीछे से लोगों को इसके खाने का चसका लग गया। उधर चीन में भी इसकी खुल कर खेती होने लगी। चीन सर्कार इस बात से बहुत घबरायी। रुपया भी देश से जाता था और प्रजा का

encelling in their complete shamelessness t atrocities which accompanied the murder queen Min" ऐसी २ बातें हुई जो महारानी मिन की हत्या के स जो अत्याचार किये गये थे उन से भी बढ़कर निर्लज्ज थीं।

बस, इसके साथ ही कोरिया के रहे सहे स्वतंत्र जीवन की सम हो गयी। अब वह जापान का एक प्रान्त है और एक गवर्नर-जन उस पर शासन करता है।

यह दुःखमय कहानी जिस ब्योरे और विस्तार के साथ लिखी है, सम्भव है कि उससे कुछ पाठक उकता गये हों, पर मेरी समझ इस विषय को और संक्षिप्त करना अनुचित होता। जापान के नाम जनता, विशेषत भारतीय जनता, की आँखों पर जो अज्ञान पट रक्खा है उसका दूर करना आवश्यक है। हमको चाहिये कि अपने मि और शत्रुओं दोनों को पहिचान लें।

चीन पर जापान की इस घृणित लोभमयी नीति का गम्भीर प्र पड़ा। लोगों को जापान से जो कुछ आशा थी वह ठण्डी हो गयी। निराशा ने घेर लिया। जापान निकट था, उसके पास बल था, उसके स यक यूरोप में भी थे, ऐसा मदान्ध लोभी देश जो देखते २ ही कोरिया चट कर गया क्या कुछ नहीं कर सकता। चीनियों का हृदय भय काँप उठा।

उधर चीन की मञ्चू सर्कार थी, जिसे सिवाय सोने के और आता ही न था। चीन को जापान ने पीट लिया पर मञ्चू सर्कार की न टूटी। चीन की अप्रतिष्ठा उसे जागृत न कर सकी। चीन का पुराना (या आश्रित) कोरिया नष्ट हो गया पर मञ्चू सर्कार हाथ पर हाथ रही। जापानियों ने चीन के इतने पास अपने पाँव जमा लिये मञ्चू सर्कार को क्षोभ न हुआ। चीनी प्रजा के हृदय में भय के साथ घृणा और क्रोध ने भी घर किया।

उन्होंने देख लिया कि ऐसी सर्कार प्रजा का हानि करने में ही समर्थ है पर प्रजा का मान रक्षा और स्वत्व रक्षा करने में न तो उसकी इच्छा है और न शक्ति, अतः अपना काम अपने हाथों हा करना होगा। इस विचार ने चीनी जनता में आशा, उत्साह और कर्म्मण्यता का सञ्चार किया।

(ग) चीन और परराष्ट्र।

ऊपर के दो खण्डों से ही इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि चीन का परराष्ट्रों के साथ, या यों कहिये कि परराष्ट्रों का चीन के साथ कैसा व्यवहार रहा है। परन्तु इस अध्याय म इस विषय का किंचित सविस्तार वर्णन करना आवश्यक है, इस लिये हम पर राष्ट्रों को पृथक पृथक लेंगे।

सब से पहिले सं० १५७४ (सन् १५१७) में पुर्तगाल वाले चीन गये थे। उनके पीछे सन् १५७६ में स्पेन वालों और सन् १५८८ म डच लोगों से चीन वालों का सामना हुआ। आरम्भ में तो इनसे बहुत लड़ाई झगड़े रहे पर पीछे से इनका प्रभाव बहुत कम हो गया। क्योंकि इनकी शक्ति ही कम हो गई। अतः इनका वर्णन विस्तार के साथ करना अनावश्यक है।

इंगलैण्ड।

डच लोगों के कुछ ही पीछे अंग्रेज चीन पहुँचे, पर आरम्भ में उनकी परिस्थिति में कोई विशिष्ट बात न थी। चीनी उनको डच समझते थे। सन् १६८४ म उन को केण्टन में कोठी बनाने और व्यापार करने का स्वत्व मिला। परन्तु इसके पीछे लगभग १५० वर्ष तक कोई महत्व की बात नहीं हुई।

इस बीच में अफ़ीम का व्यापार बढ़ता जाता था। सन् १६८४ तक २०० पेटी से अधिक अफ़ीम चीन नहीं जाती थी। पर १८२० में पेटियों की संख्या ४००० तक पहुँच गयी। बात यह थी कि पहिले तो अफ़ीम औषधि के नाम से जाती थी। पीछे से लोगों को इसके खाने का चसका लग गया। उधर चीन में भी इसकी खुल कर खेती होने लगी। चीन सर्कार इस बात से बहुत घबरायी। रुपया भी देश से जाता था और प्रजा का

स्वास्थ्य चौपट होता जाता था । यह व्यापार अँग्रेजों के ही हाथ में था क्योंकि भारत में अफ़ीम उत्पन्न होती है इसलिये अँग्रेजों से चीन सम्राट् रुष्ट थे।

१८३१ में अँग्रेजों के अफीम के जहाज कैण्टन बन्दर से निकाल दिये गये और १८३८ में अफीम के विरुद्ध कई कड़े नियम बनाये गये। इन नियमों का तात्पर्य यह था कि प्रजा का अफ़ीम खाना बन्द हो और बाहर से अफीम का आना बन्द हो। यह नियम अँग्रेजों को स्वभावत बुरे लगे और एक छोटी सी लड़ाई छिड़ गयी, जिसको ओपियम-वार (अफीम की लड़ाई) कहते हैं। उसका फल यह हुआ कि अँग्रेजों का अफ़ीम बेचने का अधिकार बना रहा। उनको हाङ्काङ्ग का द्वीप मिल गया और विदेशियों को शङ्घाई, निङ्गपो, अमॉय और फूचाउ में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया। यह घटना १८४० की है।

१८५८ के लगभग फिर झगड़ा हुआ। चीनी अँग्रेजों को कैण्टन नगर के भीतर नहीं रहने देते थे, इस बार फ्रांस भी अँग्रेजों के साथ था। अब की बार भी चीन को नीचा देखना पड़ा। जब सधि हुई तो न्यूचवाग, चेफू, ताइवान आदि कई नये स्थानों में व्यापार करने का विदेशियों को अधिकार मिल गया और उनके राजदूत पेकिंग में रहने लगे।

सन् १८७५ में फिर बखेड़ा खड़ा हुआ। कर्नल ब्राउन कुछ मनुष्यों के साथ भारत से चीन भेजे गये थे। चीन सर्कार ने उनको चीन राज्य में यात्रा करने की आज्ञा भी दे दी थी। रास्ते में उनके एक साथी मि० मार्गरी को किसी ने मार डाला। चीन सर्कार का कथन था कि मारने वाले एक जगली जाति के मनुष्य थे। ११ जगलियों को फाँसी भी दे दी गयी पर अँग्रेजों को इतने से शान्ति न हुई। बहुत कुछ वाद विवाद हुआ। यहाँ तक कि लड़ाई होने की सम्भावना प्रतीत होने लगी। पर किसी प्रकार बात शान्त हो गयी। एक सधि-पत्र लिखा गया जिसके द्वारा चेन्चाउ आदि कई नये नगर अँग्रेजी व्यापार के लिये खुल गये और चीन से कुछ लोग क्षमा माँगने के लिये इगलेण्ड भेजे गये।

१८८५ में इंगलैण्ड ने ब्रह्मा ले लिया और राज्य में मिला लिया। इस पर चीन ने [illegible] किया क्योंकि ब्रह्मा के महाराजा चीन को कर दिया करते थे। उधर फ्रान्स तथा [illegible] १८८५ [illegible] में झगड़ा चल रहा था। [illegible] चीन ने [illegible] समझौता [illegible] से युद्ध हो रहा। [illegible] निश्चय हुआ कि जैसा पहिले होता था वैसा अब भी प्रति दसवें वर्ष [illegible] भेंट भेजा करे। इस समझौते के अनुसार [illegible] ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया परन्तु भेंट भेजने का कभी अवसर ही न आया।

१८८६ में [illegible] ने पोर्ट हैमिल्टन दखल किया। जब चीन ने विरोध किया तो यह उत्तर दिया गया कि हमको यह डर है कि कहीं रूस कब्जा न कर ले, इसीलिये हम अपना दखल पैदा करते हैं। खूब रे न्याय! इसके अनुसार यदि कोई चोर पकड़ा जाय तो यह कह सकता है कि मुझे आशंका थी कि इस घर में एक दूसरा चोर घुसने वाला है इस लिये अपनी दखल मैं ही पहिले घुस गया। अस्तु, चीन के दबाव से रूस ने कहा कि वह कोरिया को नहीं दबाना चाहता। तब अंग्रेजों ने पोर्ट हैमिल्टन छोड़ा।

चीन और इंगलैण्ड का बर्मा की सीमा के विषय में बहुत दिनों से विवाद चला आता था। यह १८९७ में निर्णीत हो गया और १८९८ में [illegible] को [illegible] में अपने फौजी जहाजों के खड़े करने के लिये स्थान मिल गया।

१९०१ में बॉक्सर युद्ध में जो कुछ हुआ वह लिखा ही जा चुका है। १९०४ में एक सेना कर्नल यंगहस्बैण्ड के साथ तिब्बत भेजी गयी और जो हक चीन से शान्तिपूर्वक नहीं मिल सके वे सब शस्त्र द्वारा प्राप्त कर लिये गये।

फ्रांस।

फ्रांस वाले आये तो चीन में बहुत दिनों से थे पर उनको पहिले पहल ऐतिहासिक महत्व उस समय मिला जब सन् १८५८ के युद्ध में उन्होंने

अंग्रेजों का साथ दिया। इसके पीछे उन्होंने स्वयं चीन में तो कुछ किया नहीं पर कोचीनचीन, टाङ्किन और अनाम में अपना प्रभाव फैलाते गये। १८७३ में उन्होंने अनाम से एक संधि भी की जिससे वह अनाम के रक्षक हो गये। इसी रक्षकता के बहाने उन्होंने कुछ सेना चीनी सीमा के पास भेजी। यह बात चीन के लिये असन्तोष जनक थी। उसने कहा कि अनाम चीन के अधीन सैकड़ों वर्षों से है अत उसकी फ्रांस के साथ जो १८७३ में संधि हुई वह नियम निरुद्ध है। भला फ्रांस वाले इस बात को कब मनाने वाले थे। अत १८८४ में दोनों राष्ट्रों में लड़ाई छिड़ गयी। पहिले तो चीन की हार रही और एक संधि लिखी भी गयी पर किसी कारण से इस पर दोनों पक्ष सहमत न हुए और फिर लड़ाई आरम्भ हुई। इस बार चीनियों का पल्ला भारी रहा। अन्त में इन शर्तों पर मेल हुआ कि चीन फ्रांस वालों को सीमा पर व्यापार करने का अधिकार देदें और फ्रांस इस बात को स्वीकार करले कि चीन ही अनाम का संरक्षक है।

इस लड़ाई के परिणाम मे यूरोपियनों की दृष्टि में चीन का गौरव बढ़ गया। पर बुराई की बात यह हुई कि चीनियों को स्वयं मिथ्याभिमान ने घेर लिया और वह अपने को अत्यन्त शक्तिशाली समझने लगे।

इसके पीछे कोई बहुत महत्व की बात नहीं हुई। बॉक्सर युद्ध में फ्रांस सम्मिलित था ही, हां, इतना ही जानना पर्य्याप्त है कि कुछ तो संधियों द्वारा और कुछ योंही बलात् फ्रांस ने चीन के आग्नेय कोण पर अपना प्रभाव अच्छा जमा लिया है और धीरे २ टाङ्किन, अनाम, कम्बोडिया और कोचीनचीन को एक २ करके एक न एक बहाने से निगल गया है।

जर्मनी।

सन् १७५२ के लगभग जर्मन लोग चीन आगये थे पर १८७० के पहिले उनका कोई विशेष ऐतिहासिक महत्व न था। उस साल फ्रांस को हरा कर उनका बल और अभिमान बढ़ गया था इसी लिये कभी २

उद्दण्डता पर उठते थे परन्तु प्राय उन्होंने नीति और दूरदर्शिता से काम लिया। इसी लिये चीनी उनको सीधा समझते थे। इसका फल यह हुआ कि चीनी सेना के शिक्षण के लिये प्राय जर्मन ही रक्खे जाते थे और जर्मनी से ही शस्त्र और अन्य सैनिक सामग्री मोल ली जाती थी।

परन्तु १८६७ में जर्मनी ने अपना सच्चा रूप दिखलाया। न कोई लड़ाई थी न झगड़ा था। हा कुछ मारपीट हो गयी थी जिसमें दो एक जर्मन पादरी मारे गये। बस, बिना कुछ कहे सुन, जर्मनी ने क़ियाउ चाउ और उसके आस पास की भूमि यकायक ले ली। इसका परिणाम यह हुआ कि रूस ने पोर्ट आर्थर और ता-लिएन वान, इङ्गलैण्ड ने वइहाइ वाइ और फ्रांस ने क्वाङ्गचाउ वान ले लिया। हा, इन तीनों ने चीन की लज्जा बचाने के लिये, नाम मात्र को ९९ वर्ष का पट्टा लिख दिया। यह कहना अनावश्यक होगा कि पट्टे के लिये कुछ धन नहीं दिया गया।

बॉक्सर युद्ध के समय जर्मनी का जैसा कुछ व्यवहार रहा उसका कथन ऊपर हो ही चुका है।

अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र)

सब से पहिले १७८९ में अमेरिकन लोग चीन आये। उसके कुछ ही दिनों पहिले वह अंग्रेजों से लड़कर स्वतन्त्र हुए थे। इस लिये चीन सर्कार उनसे कुछ प्रसन्न सी थी। इसके अतिरिक्त अमेरिका वाले अफीम के व्यापार से पृथक् रहते थे। चीन में उन्होंने कभी पादरी भेजकर या अन्य रीति से अपना प्रभाव नहा बढ़ाना चाहा। कभी उन्होंने चीन की भूमि नहा दबाई। इतना ही नहा, बॉक्सर युद्ध के पीछे अर्थ दण्ड का जो भाग उनको मिला था उसमें से भी उन्होंने कुछ लौटा दिया। इन कारणों से अमेरिका और चीन में कभी विशेष वैमनस्य नहीं हुआ। वैमनस्य का एक कारण कभी २ उत्पन्न हो जाता है। बहुत से चीनी अमेरिका जाते हैं और यह बात अमेरिका के कई राष्ट्रों को पसन्द नहीं है, इसलिये वह इनको रोकने के लिये भाँति २ के प्रयत्न करते हैं। पर

जहा तक पता लगता है प्रधान अमेरिकन सर्कार का इसमें दोष नहीं है।

रूस।

यूरोपियन राष्ट्रों में से रूस का चीन से सब से पुराना सम्बन्ध है। किसी समय में रूसी-साम्राज्य के दक्षिण और पूर्व का भाग चीन के अधीन था। इस सम्बन्ध के क्रमश टूटने पर भी दोनों देशों को एक दूसरे का सन् १३६८ तक [जब कि चीन से मंगोलों का राज्य उठ गया] कुछ ? पता था। पर इस साल के पीछे मंचूराज्य की स्थापना तक एक का दूसरे के इतिहास में कहीं नाम भी नहीं मिलता।

१६५० में रूस और चीन में युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों राष्ट्र अमूर नदी के किनारे [यक्स] अल्वजिन को लेना चाहते थे। यह लड़ाई १६८६ में समाप्त हुई। रूसियों को अल्वाजिन छोड़ना पड़ा। बहुत से रूसी पकड़ कर पेकिंग लाये गये और मंचुओं की झण्डे वाली पल्टनों में भरती कर लिये गये।

उस समय से लेकर अब तक चीन और रूस में दस बारह छोटी बड़ी सन्धियां हो चुकी हैं। रूस बराबर चीन को उत्तर पूर्व और पश्चिम में दबाना चाहता था। जब १८७० के लगभग चीन की मुसलमान प्रजा ने विद्रोह कर दिया था रूस ने चुपके से चीन का इली प्रान्त दबा लिया। पर १८८१ में चीन ने उसे लौटा लिया। चीन का निरन्तर प्रयत्न यही था, और यह प्रयत्न अल्वजिन वाले झगड़े के समय स हो रहा था, कि रूसी मंचूरिया के पास न फटकने पावे। इसी लिये उसने उस प्रान्त को उजाड़, जनशून्य मरुस्थल सा बना रक्खा था। पर १८८८ से उसने अपनी नीति पलट दी क्योंकि उसको कई अंग्रेज आफिसरों की खोज से पता लगा कि यह प्रान्त अत्यन्त उपजाऊ और खनिज पूर्ण है। फिर तो चीन ने इस को जनपूर्ण और समृद्ध करने का पूर्ण प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। उसका विचार यह था कि यह प्रान्त इतना सम्पन्न और

सुसंगठित कर दिया जाय कि रूस या कोई अन्य विदेशी इसमें अपने पाव न अड़ा सके। यह उद्देश्य पूरे न होने पाये। जापान से युद्ध के पीछे चीन इतना दुर्बल हो गया कि रूस को अवसर मिल गया। १८९६ में उसने रेलवे सम्बन्धी कई अधिकार चीन सरकार से लिये और १८९७ में जर्मनी का अनुकरण करके पोर्ट आर्थर ओर तालिएनवान दबा लिया। इन बातों का फल यह हुआ कि यद्यपि नाम का मञ्चूरिया चीन का प्रान्त था, पर उस पर रूस का बहुत बड़ा दबाव था। जब से रूस ने साइबीरिया मे होते हुए व्लाडिवॉस्टॉक तक रेलवे खोला तब से यह दबाव और भी बढ गया।

जापान।

चीन–जापान के सम्बन्ध का सब से बड़ा अंश तो वह है जो कोरिया विषयक है। इस का कथन पहिले ही हो चुका है। जापान की नीति ने यूरोप वालों को भी पीछे डाल दिया। इस का एक कारण यह है कि जापान स किसी को ऐसी आशा नहा था। लोग समझते थे और यह समझना समुचित ही था कि जापान चीन के अभ्युत्थान म सहायक होगा क्योंकि यदि यह दोनों राष्ट्र मिल जायँ तो पृथ्वी में इनके सामने किसी का ठहरना कठिन हो जाय।

१८७४ में फार्मोसा के पास एक जापानी जहाज टूट कर डूब गया। जो मल्लाह बच गये उनको फर्मोसा के जंगलियों ने मार डाला। यह कोई नई बात न थी। पर जापान के नये नये निकले थे और वह उनकी परीक्षा करना चाहता था। उसने चीन वालों से लिखा पढ़ी की। चीन ने उत्तर दिया कि ये जंगली एक प्रकार से स्वतन्त्र हैं अत कुछ नहीं हो सकता। बस, जापान ने अपनी एक सेना फॉर्मोसा भेजी। अब चीनियों की आंख खुली। वे डरे कि कहीं जापानी इस द्वीपको दबा न लें क्योंकि जब चीन ने जंगलियों को स्वतन्त्र कह दिया तब जापान को अधिकार था कि वह जो चाहे करे। अत अंग्रेजी राजदूत

मि० वट को मध्यस्थ बनाकर सधि हो गयी और क्षतिपूर्ति के लिये चीन ने ५००,००० तेल (चीनी सिक्का दण्ड दिया।

यह बात चीन के लिये इतनी अपमान जनक समझी गई कि चीन के सर्कारी गजट में इसका नाम तक नहीं आया और संधिपत्र में ५००,००० का अर्थदण्ड इन चक्करदार शब्दों में दिखलाया गया—

"The Chinese Government will at once give the sum of 100,000 taels to compensate the families of the ship wrecked Japanese who were killed In addition to this, the Chinese Government will not fail to pay a further sum of 400,000 taels on account of the expenses occasioned by the con struction of roads and erection of buildings which, when the Japanese troops are withdrawn, the Chinese Governmet will retain for its own use"

"जो जहाजी जापानी मारे गये हैं उनके कुटुम्बियोंको चीन सर्कार १००,००० तेल देगी। जापानियों का सड़क और मकान आदि बनवाने में जो व्यय हुआ है उसके लिये भी वह ४००,००० तेल देगी। जब जापानी सेना हट जायगी तो चीन सर्कार इन सड़क आदिकों को अपने काम में लावेगी"। सबसे हँसी की बात तो यह हुई कि दो तीन महीने पीछे कई चीनी जनरलों को इस बात के लिये तरक्की दी गयी कि उन्होंने फार्मोसा में बड़ी वीरता दिखाई थी।

उसी साल जापान ने चीनके मना करने और स्वयं वहाँ के निवासियोंके प्रार्थना करने पर भी लूचू को दबा लिया। बॉक्सर युद्ध में जापान सम्मिलित हुआ ही था।

कोरिया के अतिरिक्त मञ्चूरिया पर भी जापान की बहुत दिनों से दृष्टि थी, पर रूस के मारे उसका वश न चलता था। इसी लिये अवसर

पाकर उसने प्रसिद्ध रूस–जापान युद्ध छेड़ा। युद्ध छेड़ते समय जापान ने यह बात प्रकट की थी कि रूस ने चीन पर अनुचित दवाव डाल कर चीन के कई अंशों पर अनुचित अधिकार प्राप्त कर लिया है। अत जापान इस लिये लड़ रहा है कि चीन के स्वत्वों के साथ जो अनुचित हस्तक्षेप हुआ है वह पलट दिया जाय। पर जब उसकी जीत हो गयी तो पलटना पलटाना तो दूर रहा, जापान रूस का उत्तराधिकारी बन बैठा और जो अनुचित अधिकार रूस को प्राप्त हो गये थे उनसे स्वय काम लेने लगा।

अन्यराष्ट्र।

योरप के छोटे २ राष्ट्रों में से प्राय सभी चीन से कुछ न कुछ सम्बन्ध के प्रार्थी थे। डेन्मार्क, बेल्जियम, स्पेन, पुर्तगाल, स्वीजरलैण्ड, हॉलैण्ड, और आस्ट्रिया का सम्बन्ध तो व्यापारी था। इटली नि सन्देह और ढग के विचार रखता था। १८६६ में इटली के राजदूत सेडररोंग ने चेहाकियाग तट पर विशेष स्वत्व पाने के लिये चीन पर बहुत कुछ दवाव डाला था पर चीन दृढ रहा अत उनकी कुछ चली नहीं। इसी का बदला इटली ने बॉक्सर युद्ध के समय निकालना चाहा।

अमेरिका के अन्य राष्ट्रों (अर्थात् सयुक्त राष्ट्र के अतिरिक्त) में से पेरू, ब्रेजील, मेक्सिको की चीन के साथ सधिया हैं। इनमें पेरू की सधि कुछ महत्त्व की है। यह १८७५ में हुई। इसके पहिले बहुत से चीनी कुली पेरू जाया करते थे पर उनके साथ बहुत बुरा बर्ताव होता था। इस सधि द्वारा यह निश्चय हुआ कि इन कुलियों के साथ अच्छा बर्ताव हो, शर्तबन्दी की प्रथा बन्द हो जाय और चीनी कुलियों पर चीन सरकार निरीक्षण करे।

इसके अतिरिक्त सार्बिया, रूमानिया आदि कई छोटे राष्ट्र हैं जिना की चीन के साथ कोई सधि तो नहीं है पर यह सब चीन के महत्त्व को इतना मानते थ कि जब इनमें कोई विशेष राजनैतिक परिवर्तन होता तो उसकी सूचना चीन को दे दिया करते थे।

अब यह अध्याय बहुत लम्बा हो चुका है। इसके खण्डों के देखने से स्पष्ट हो गया होगा कि मन्चू सरकार कैसा शासन करती थी। जो एक मात्र निर्लज्ज हो उसकी तो बात ही और है पर वस्तुत चीनी प्रजा मुँह दिखाने योग्य नहीं रह गयी थी। पहिले तो शासन का प्रत्येक अंग इतना बुरा और सदोष था कि प्रजा की उन्नति में पद २ पर बाधा पड़ती और विदेशियों को बीच में बोलने का अवसर मिलता। दूसरे, मन्चुओं को अभिमान ने इतना मत्त कर रक्खा था कि वह अपने को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान समझते थे। बैठे बिठाये सारे संसार को लड़ने का निमन्त्रण दे दिया। जब लड़ने चले तो जम कर तीन चार महीने भी न ठहर सके। उलटे देश के गले में अपमान के साथ २ एक भारी ऋण का बोझ बाँध दिया। जिस समय चीनी पेकिंग में लिगेशनों की किलेबन्दी और विदेशी गारदों को देखते थे [और हैं]। उनका हृदय ग्लानि और क्रोध के मारे भर जाता था [और है]। पेकिंग के उस भाग में सिवाय नौकरों के और कोई चीनी नहीं रह सकता। अपनी ही राजधानी में अपना यह अपमान!

पर राष्ट्रों के विषय में भी चीन सर्कार की नीति कैसी कच्ची और निर्बल थी। जब जिस राष्ट्र ने चाहा चीन का एक भाग दबा लिया। आरम्भ से लेकर रूस जापान युद्ध तक चीन बराबर दबता ही आया। इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, रूस, जापान सभी उसमें यथेच्छ पृथक २ या मिल कर खेलते आये, पर चीन सिवाय बन्दर घुड़किया के और कुछ न कर सका।

ऐसी बातों से प्रजा की जाग्रति होनी ही थी। उसका हृदय इन लज्जाजनक दृश्यों को देखते २ पक गया। जो सरकार न तो देश की रक्षा करती है, न प्रजा के मान या स्वत्व की रक्षा कर सकती है, जो स्वदेश और परदेश में अपनी हँसी कराती है उसकी छत्रच्छाया में रहना व्यर्थ है। उसको शीघ्र निष्कासित करना ही श्रेयस्कर है।

पञ्चम अध्याय ।

सुषुप्ति की समाप्ति ।

जिन बातों का दिग्दर्शन ऊपर के अध्यायों में हुआ है उनसे यह स्पष्ट ही है कि चीनियों की प्रगाढ निद्रा का भंग होना स्वाभाविक था। एक ओर जापान की उन्नति, दूसरी ओर यूरोपियन राष्ट्रों की निर्लज्ज लोलुपता तीसरी ओर मञ्चुओं का दुःशासन—यह सब बातें एक आत्माभिमानी जाति को जगाने के लिये पर्य्याप्त था। जो विद्यार्थी जापान आदि से लौटते थे वह सब उन्नति का ही राग अलापते थे। उनको यह दृढ विश्वास था कि जिस दिन चीन जाग जायगा उस दिन एशिया में यूरोपीय आधिपत्य का अन्त हो जायगा, जैसा कि एक बार वेनह्सियांग ने सर राबर्ट हार्ट से कहा था "हम लोगों को सोने दो, यदि हम को जगाओगे तो हमारी जाति तुमको घबरा देगी।"

चीन उन देशों में से था जिन में राजकर्मचारियों का प्रभाव और अधिकार बहुत बढा चढा होता है। नीचे से ऊपर तक इन्हीं कर्मचारियों के हाथ में शासन सूत्र था। यदि किसी एक कर्मचारी पर कोई आपत्ति आ पड़े तो सब के सब उसकी सहायता पर खड़े हो जाते। बात यह थी कि दो चार को छोड़ कर सभी लालची, घूँस खाने वाले प्रजापीड़क थे। यदि इनमें इतना एका न हो तो काम न चले। चोर को चोर की सहायता करनी ही चाहिये।

ऐसी परिस्थिति में प्रजा की जो दशा होती है वह हम से छिपी नहीं है। कोई उसकी सुनता ही नहीं। जो बात किसी छोटे से सरकारी कर्मचारी ने कह दी वह पत्थर की लकीर हो गयी। नीचे से ऊपर तक सब कर्मचारी वही बात कहेंगे। परिणाम यह होता है कि पिसते २ प्रजा भी बड़ी ही

सहनशील हो जाती है। वह। २ आपत्तियों को चुपचाप झेल लेती है। भीतर २ आग दहकती रहती है पर ऊपर से वही राख का ढेर दीखता है। ठीक यही दशा चीन में थी। अशान्ति थी, क्रोध था, पर ऊपर से कुछ प्रतीत नहीं होता था। प्रजा ने किसी प्रकार के शासन सुधार की पुकार नहीं की, उसकी निद्रा वैसी ही निस्तब्ध थी, सिवाय दो चार नवयुवकों और नवशिक्षितों के कोई राजनैतिक प्रश्नों पर विचार ही नहीं करता था और मञ्चू सरकार अपनी पीठ ठोंक कर अपने लिये साधुवाद देती हुई मोह-गर्त में पड़ी सो रही थी।

ऐसे समय में—सन् १८६८ (स १६५५) में—सम्राट क्वाग्हस् के हृदय में स्वत सुधार की इच्छा जाग्रत हुई। उन्होंने दूर दर्शिता से काम ले कर देखा कि यों अन्धेर से काम नहा चल सकता। यदि पृथ्वी पर चीन के गौरव और स्वतन्त्र अस्तित्व को बचाना है तो इसके पहिले कि कोई ऐसा भारी धक्का लगे जिससे सँभलना ही कठिन हो जाय स्वय सुधार करना अच्छा है। इस विचार से उन्होंने उदार विचारों के कई सज्जनों की एक सभा की। इन लोगों में काग् यु-वाइ प्रधान था। सब की सम्मति लेकर सम्राट ने कई घोषणाएँ निकालीं। यदि इन के अनुसार काम होता तो चीन का कायापलट हो जाता। प्राचीन शिक्षा के स्थान में नवीन पाश्चात्य शिक्षा को प्राधान्य दिया गया। लोगों का उत्साह इतना बढ गया कि मन्दिरों से मूर्तिया हटा २ कर पाठशालाएँ खोली गयी [परिशिष्ट क]

पर यह दशा अधिक दिन न रहने पायी। पुराने विचार के लोग घबरा गये। उन्होंने देखा कि यदि उन्नति का स्रोत यों ही बहता रहा तो हमारी अनुचित आय मारी जायगी और सारे अवैध अधिकार छिन जायँगे। बस इन लोगों ने राजमाता को जा कर उभाड़ा। वह सहज ही उधर मिल गयीं। इधर सम्राट को युआन-शिह काई का बड़ा भरोसा था। यु-आन तेंजिंग का सूबेदार था। वह उदार और नवीन विचारों का व्यक्ति

था और अपने सूबे में उसने कई अच्छे सुधार किये थे। पर इस समय, न जाने क्यों, उसने विश्वासघात किया और राजमाता के भतीजे, जगलू, से सारा भेद कह दिया। भेद ही क्या था, सम्राट की इच्छा थी कि राजमाता कैद कर के कहीं दूर रख दी जाय कि फिर राजकार्य्य में हस्तक्षेप न कर सकें। पर युआन के धोखे ने सब काम बिगाड़ दिया। पुरानों की जीत रही। सम्राट के साथी या तो भाग गये या पकड़ लिये गये। काग अंग्रेजों की सहायता से हांगकांग भागा। स्वयं सम्राट राजप्रासाद में एक प्रकार के कैदी हो गये। उन पर बड़ा पहरा रहने लगा।

इसके कुछ ही काल पीछे प्रसिद्ध बाक्सर विद्रोह हुआ। उस अवसर पर राजमाता की मूर्खता और उनके सहायकों या मंत्रियों की अदूरदर्शिता से चीन का जो कुछ अपमान सहना पड़ा और क्षति उठानी पड़ी उसका कथन चतुर्थ अध्याय में हो चुका है। जिन लोगों के द्वारा सुधारकों का निष्कासन हुआ था उनको पर्य्याप्त दण्ड मिल गया।

ऐसा प्रतीत हुआ कि राजमाता की भी आंख खुल गयी। उनके कई अन्धे मंत्री तो यूरोपीय राष्ट्रों के परामर्श से दूर कर ही दिये गये थे, अब उन्हों ने युआन को चिहली प्रान्त का प्रान्ताधीश बनाया। इसी प्रान्त में चीन की राजधानी पेकिंग भी है।

यहां आकर युआन ने कई आवश्यक सुधार किये। स्थानीय शासन का एक विभाग नियत किया गया और इसके द्वारा नागरिकों को म्युनिसिपैलिटी के काम की बहुत कुछ शिक्षा दी गयी। बिजली की रोशनी का प्रबन्ध किया गया, जनताके स्वास्थ्यके लिये कई उपयोगी प्रबंध किये गये स्कूल और कालेज खोले गये और एक विश्वविद्यालय की नींव डाली गयी, पुलीस का सुधार हुआ और बहुत से चीनी विद्यार्थी जापान, जर्मनी, इंगलैण्ड आदि देशों को भेजे गये।

इस समय चीन में तीन राजनीतिक दल थे।

१ नवयुवक दल—यह दल मञ्चू राजवंश को निकालकर प्रजातन्

सहनशील हो जाती है। यहां २ आपत्तियों को चुपचाप झल लेती है। भीतर २ आग दहकती रहती है पर ऊपर से वही राख का ढेर दीखता है। ठीक यही दशा चीन में थी। अशान्ति थी, क्रोध था, पर ऊपर से कुछ प्रतीत नहीं होता था। प्रजा ने किसी प्रकार के शासन सुधार की पुकार नहीं की, उसकी निद्रा वैसी ही निस्तब्ध थी, सिवाय दो चार नवयुवकों और नवशिक्षितों के कोई राजनैतिक प्रश्नों पर विचार ही नहीं करता था और मञ्चू सरकार अपनी पीठ ठोंक कर अपने लिये साधुवाद देती हुई मोह-गर्त में पड़ी सो रही थी।

ऐसे समय में—सन् १८६८ (स १९५५) में—सम्राट काणूहस् के हृदय में स्वत सुधार की इच्छा जाग्रत हुई। उन्होंने दूर दर्शिता से काम ले कर देखा कि यों अन्धेर से काम नहीं चल सकता। यदि पृथ्वी पर चीन के गौरव और स्वतन्त्र अस्तित्व का बचाना है तो इसके पहिले कि कोई ऐसा भारी धक्का लगे जिससे सँभलना ही कठिन हो जाय स्वय सुधार करना अच्छा है। इस विचार से उन्होंने उदार विचारों के कई सज्जनों की एक सभा की। इन लोगों में काण् यु-वाइ प्रधान था। सब की सम्मति लेकर सम्राट ने कई घोषणाएँ निकालीं। यदि इन के अनुसार काम होता तो चीन का कायापलट हो जाता। प्राचीन शिक्षा के स्थान में नवीन पाश्चात्य शिक्षा को प्राधान्य दिया गया। लोगों का उत्साह इतना बढ़ गया कि मन्दिरों से मूर्तियां हटा २ कर पाठशालाएँ खोली गयीं [परिशिष्ट क]

पर यह दशा अधिक दिन न रहने पायी। पुराने विचार के लोग घबरा गये। उन्होंने देखा कि यदि उन्नति का स्रोत यों ही बहता रहा तो हमारी अनुचित आय मारी जायगी और सारे अवैध अधिकार छिन जायँगे। बस इन लोगों ने राजमाता को जा कर उभाड़ा। वह सहज ही उधर मिल गयीं। इधर सम्राट को युआन-शिह काई का बड़ा भरोसा था। यु-आन तेंजिंग का सूबेदार था। वह उदार और नवीन विचारों का व्यक्ति

भी देहान्त होगया। स्वर्गीय सम्राट् के भाई राजकुमार चुन छोटे सम्राट के अभिभावक नियत हुए। मृत्यु के कुछ पहिले, राजमाता निम्नलिखित घोषणा कर गई थीं —

"अत्यन्त अल्पगुणोंवाली होने पर भी यह मेरा सौभाग्य था कि म देवलोकवासी सम्राट्, अपने पति, हिस्एन फेंग, की पत्नियों में चुनी गयी। जब मेरे पुत्र सम्राट् तुग चिह, १८६१ (स० १९१८) में सिंहासन पर बैठे, उस समय देश म विद्रोह फैला हुआ था। ताइपिंग और पगड़ी वाले विद्रोही, मुसलमान विद्रोही और क्वाइचन जगली वारी २ में सारे देश में अशान्ति फैला रहे थे। समुद्र तट के प्रान्त कष्ट में थे, प्रजा पीड़ित हो रही थी, चारो ओर दु ख ही दु ख देख पड़ता था। पूर्वीय राजमाता की सहायता से दिनरात परिश्रम करके मने राज का काम चलाया। जो नीति मेरे स्वर्गीय पति बतला गये थे उसका अनुसरण करते हुए, म सब कर्म्मचारियों और सेनापतियों को उत्तेजित करती रही, उनके कामों का निरीक्षण करती रही और शान्ति के लिये अनवरत प्रयत्न करती रही। मैंने योग्य लोगों को पदों पर नियत किया और सत्परामर्श सदैव माना, मैंने प्रजा के समस्त कष्टों का निवारण किया। दैवी कृपा से मने विद्रोहों का दमन किया और भय के स्थान में शान्ति स्थापित की।

"जब सम्राट् क्वाग हसू सिंहासन पर बैठे उस समय परिस्थिति और भी भयावह थी। प्रजा अत्यन्त निर्धन हो गयी थी। राज्य के भीतर दु ख ही दु ख था, बाहर से निरन्तर कष्ट मिल रहा था, अत मुझे शासन में सुधार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। १९०६ में मैंने एक घोषणा द्वारा नियमित शासन की सूचना दी, इस साल मैंने उसके स्थापित होने की तिथि भी निश्चित कर दी है। हर्ष की बात है कि मेरा स्वास्थ्य सदैव अच्छा रहा और मेरी शक्ति बनी रही। परन्तु न जाने क्यों, गत ग्रीष्म ऋतु से मैं प्राय रुग्ण रहती हूँ। सर्कारी कामों के कारण मुझे विश्राम न मिल सका। मेरी नींद और भूख जाती रही फिर भी मैंने एक दिन भी विश्राम न लिया।

एक 'जातीय सभा' नियत की जाय। और राजकुमार पु लुन के नेतृत्व में, इस सभा के नियम आदि निश्चित करने के लिये, एक कमेटी नियत की गयी। १६ अक्तूबर को यह घोषित किया गया कि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सभाएँ और प्रत्येक नगर और जिले में उसी प्रकार की स्थानीय सभाएँ होंगी। पु लुन कमेटी ने शीघ्र ही अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। उसने और तो सब नियम बनाए पर वस्तुत सभा को कोई अधिकार नहीं दिया गया। वह केवल परामर्श दे सकती थी। परामर्श का मानना न मानना सरकार की इच्छा पर था। उसकी परिस्थिति भारतीय व्यवस्थापक सभाओं की सी ही प्राय थी। जो कुछ हो, राज ने रिपोर्ट की बातें मान लीं। यह निश्चित हुआ कि अगस्त १६०६ में प्रान्तीय सभाएँ आरम्भ हो जायँ। २७ अगस्त १६०८ को शासनप्रणाली में जो परिवर्तन आवश्यक समझे गये उनकी सूचना जनता को दे दी गयी और यह भी घोषित कर दिया गया कि नौ वर्ष में अर्थात् १६१७ में 'जातीय सभा' (या पार्लिमेण्ट) का पहिला अधिवेशन होगा।

इन घोषणाओं से ही पता चलता है कि उस समय चीनीदर्बार की मानसिक दशा क्या थी। वस्तुत उसकी बुरी गत थी। एक ओर तो बॉक्सर युद्ध के समय का अनुभव उसे यह प्रेरणा कर रहा था कि बिना उन्नति किये, बिना प्रजा के स्वत्वों की वृद्धि किये, काम नहीं चल सकता, दूसरी ओर पुराने कर्मचारी, मञ्चू सर्दार, खुशामदी दर्बारी यह कहते थे कि प्रजा को दबा रखने में ही कल्याण है क्योंकि जहाँ एक बार बाग ढीली की, शीघ्र ही बेड़ा डूब जायगा और प्रजा सारे अधिकार हस्तगत कर लेगी। बस चीन-सरकार इन्हीं दोनों मतों के झकोरों में पड़ी कभी इधर जाती कभी उधर सुधार करती थी पर अधूरा, सुधार रोकती थी पर दबते हुए।

इसी साल नवम्बर में सम्राट् क्वाङह्यू का देहान्त हो गया। उनका छोटा बच्चा पुयि सम्राट् हुआ। थोड़े ही दिनों पीछे वृद्धा राजमाता का

युआन के निकाले जाने से चीन के शासक अप्रसन्न नहीं हुए परन्तु चीन के सर्व लिबरल नवयुवक दल भी प्रसन्न हुए क्योंकि उनको विश्वास था कि अवनत शासन का सूत्र युआन के हाथ में रहेगा, वह प्रजातन्त्रवादियों की प्रगति को बढ़ने न देगा। पर इस समय तो उलटा ही बन पड़ा था। नवीन राजप्रतिनिधि (वर्तमान सम्राट् के पिता) ने प्रधान [illegible] लिएन हुंग को अपना [illegible] बना रक्खा था। वह राजदरबार में फूला फला था। राजकुमार चुन इस बात से असन्तुष्ट थे पर उनमें इतना साहस नहीं था कि कुछ [illegible]। उन्होंने युआन को फिर बुलाना चाहा पर यह भी न कर सके। शासन की दशा बिगड़ती ही गई।

१८ अक्तूबर १९०९ को प्रान्तीय सभाएं बैठीं। लोग सभा समाज के नियमों से बहुधा अपरिचित थे पर चीन में शिक्षा का प्रचार बहुत है, दूसरे सब को देशहित की चिन्ता लगी रही थी अतः यह सभाएँ बहुत कुछ काम कर गईं। साल भर के भीतर इन्होंने दो बार यह प्रार्थना की कि पार्लियामेण्ट १९१७ के स्थान में और पहिले हो। पर दोनों प्रार्थनाएँ अस्वीकृत रहीं। इस से यह न समझना चाहिये कि इन्होंने कुछ काम न किया। लोगों को जो शिक्षा मिली वही बहुत मूल्य रखती है।

३ अक्तूबर १९१० को 'जातीय सभा' बैठी, उसके नियम यह थे—

(१) दो सभापति और उपसभापति होने चाहिये।

(२) खुलते समय स्वयं सम्राट् या उनके मनोनीत कोई राजकुमार उपस्थित होंगे।

(३) जिन २ विषयों पर सभा को उस साल विचार करना होगा वह पहिले ही दिन बतला दिये जायँगे।

(४) सदस्यों का चुनाव सम्राट् करेंगे। जो सदस्य प्रान्तीय सभाओं के प्रतिनिधि होंगे उनका चुनाव प्रान्तीय शासक करेंगे।

(५) प्रत्येक सदस्य तीन वर्ष के लिये चुना जायगा।

(६) सदस्यों की संख्या २०० होगी। वह इस प्रकार विभक्त होंगी—

"गत शनिवार को सम्राट् की मृत्यु हुई। यह दुःख मेरे लिये असह्य होगया। मैं अपने को सँभाल नहीं सकती। मेरा रोग असाध्य है, बचने की कोई आशा नहीं है।

इस समय सुधार का क्रमशः प्रचार हो रहा है। नवीन सम्राट् अभी बच्चे हैं और उनको शिक्षा की आवश्यकता है। उनके अभिभावक और मन्त्रियों को चाहिये कि देश की जड़ प्रबल करने में उनको सहायता दें। सम्राट को चाहिये कि अपने शोक को भूल कर ऐसा प्रयत्न करें जिससे कि उनके पूर्वजों की कीर्ति और भी उज्ज्वल हो। यही मेरी हार्दिक आशा है।"

यह उस विचित्र महिला के अन्तिम वाक्य हैं। यह कहना कठिन है कि चीन के वर्तमान इतिहास में कितनी अच्छी या बुरी बातों के लिये यह उत्तरदानी है।

३ दिसम्बर को ह्सुआन तुंग के नाम से पुयि सम्राट् हुए। पार्लिमेण्ट के विषय में जो घोषणा हुई थी वह फिर से दुहरायी गयी। लोगों को इस नये शासन से बड़ी २ आशाएँ थीं क्योंकि राजकुमार चुन बुद्धिमान् मनुष्य थे और बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर चुके थे। पर सब आशाएँ झूठी निकलीं। एक महीना भी न होने पाया था कि युआन पदच्युत किये गये। सर्कारी गजट में, यह लिखा गया कि युआन के पैर में कोई रोग हो गया है अतः वह काम नहीं कर सकते और अपने घर जा कर औषधि सेवन करेंगे। तात्पर्य्य यह हुआ कि वह निकाले गये और उनको सीधे घर जाने की आज्ञा हुई। बड़े कर्म्मचारियों को निकालने की यह प्रथा सभी देशों में प्रचलित है। कई यूरोपियन राजदूत चीन सर्कार से युआन को रखने के लिये आग्रह करना चाहते थे क्योंकि वह उनकी योग्यता से परिचित थे पर रूस और जापान उनसे बुरा मानते थे क्योंकि वह सदा इन दोनों की लोभपूर्ण नीति का विरोध करते आये थे, अतः कोई राष्ट्र कुछ न बोला।

कुछ निश्चय हो लेता तब पूरी सभा के सामने आता। सदस्यों को अपनी स्वतन्त्र सम्मति देने का पूर्ण अधिकार था। कई अनुभवी लोगों का कहना है कि पहिले अधिवेशन में ही इस सभा का काम किसी पाश्चात्य देश की पार्लिमेण्ट से कम गौरव का नहीं था।

इस सभा के स्थापित होने के कुछ ही काल पीछे प्रान्तीय सभाओं ने पार्लिमेण्ट के लिये फिर प्रार्थना की। जातीय सभा ने भी इसका अनुमोदन किया। कई सदस्यों ने उत्साह के मारे अपनी अँगुलियों को काट कर रक्त से हस्ताक्षर किये। फिर भी प्रार्थना के स्वीकृत होने की विशेष आशा न थी पर इस अवसर पर एक अनायास सहायता मिल गयी। राजमाता लुंग यु सम्राट् के अभिभावक राजकुमार चुन के विरुद्ध थीं। उन्होंने सभाओं का साथ दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रार्थना स्वीकार हो गयी और ४ नवम्बर १९१० को यह घोषणा हुई कि तीन वर्ष के भीतर ही पार्लिमेण्ट स्थापित हो जायगी और (*) कैबिनेट द्वारा शासन होगा। पार्लिमेण्ट की दोनो शाखाओं के लिये नियम भी प्रकाशित किये गये।

वक्तव्य (*)—प्रायः प्रत्येक पार्लिमेण्ट की दो शाखाएँ होती हैं। इन के नामों और अधिकारों में देश २ में भेद होता है। पर एक ऊँची और दूसरी नीची मानी जाती है। प्रायः सभी नियमों पर पहिले नीची शाखा में विचार होता है। फिर जब यह शाखा कोई मतव्य निश्चित कर लेती है तब ऊँची शाखा उस प्रश्न पर विचार करती है। प्रायः नीची शाखा में सामान्य जनता के प्रतिनिधि और ऊँची शाखा में धनाढ्यों जागीरदारों, उपाधिधारियों आदि विशिष्ट जनों के प्रतिनिधि रहते हैं। आजकल बहुत से देशों में नीची शाखा का ही प्रभाव बढ़ता जाता है।

मन्त्रिमण्डल को कैबिनेट कहते हैं। प्रायः पार्लिमेण्ट वाले देशों में यह प्रथा है कि पार्लिमेण्ट में जो दल प्रबल होता है उसी के नेता मंत्री होते हैं। इनके समूह को कैबिनेट कहते हैं। यह लोग पार्लिमेण्ट के सदस्य

(क) राजवश के राजकुमारों, ड्यूकों और सर्दारों की ओर से १६
(ख) मञ्चू और चीनी पैत्रिक सर्दारों की ओर से १२
(ग) मगोल, तिब्बती और मुसलमान सर्दारों की ओर से १४
(घ) राजवश के निकटतम सम्बन्धियों की ओर से ६
(यह सम्बन्धी लोग आपस में ६० व्यक्तियों को चुनेंगे, जिनमें से ६ को सम्राट् सदस्य चुनेंगे, शेष आशाधारी सदस्य कहलाएँगे)
(ट) पेकिंग के उच्च कर्म्मचारियों की ओर से ३२
(कर्म्मचारी लोग आपस में से १६० व्यक्ति चुनेंगे जिनमें से उपर्युक्त रीति से १२८ ' आशाधारी सदस्य ' हो जायँगे और ३२ सम्राट् द्वारा चुने जायँगे)
(च) प्रसिद्ध विद्वानों, अध्यापकों, ग्रथकारों की ओर से १०
(छ) बड़े २ जमीनदारों और धनाढयों की ओर से १०
(ज) प्रान्तीय सभाओं की ओर से १००
(सब प्रान्तों के प्रतिनिधियों की सख्या बराबर नहीं थी। सब से बड़ी सख्या, ६—राजधानी वाले प्रान्त, चिहली से आती थी)।

कुल सख्या २००

इस सभा का चीनी नाम त्जेचेनग्युआन था। इसके सामने दो प्रकार के कार्य्य आते थे। कुछ तो स्वतत्र विषय जो सम्राट् की ओर से इसके सामने उपस्थित किये जायँ। दूसरे, कुछ प्रश्न ऐसे थे जो प्रान्तीय सभाओं से आते थे। यदि किसी प्रान्तीय सभा और उस प्रान्त के सूबेदार से किसी विषय पर मतवैषम्य हो जाय तो वह विषय जातीय सभा के सामने आता था। फिर सभा उसपर विचार करके अपना निश्चय सम्राट् के सामने रखती थी। यदि किसी सूबेदार के विरुद्ध कोई शिकायत हो तो उस पर विचार करना भी इस सभा का ही काम था। भिन्न २ कार्य्यों के अनुसार इस सभा के सदस्य कई उपसभाओं में विभक्त थे। पहिले प्रत्येक प्रश्न उपयुक्त उपसभा में उपस्थित किया जाता फिर वहाँ जब उस पर

इन बातों से यह स्पष्ट है कि अब चीनी जाति की दीर्घसुषुप्ति का अन्त हो गया था। प्रजा अपने अधिकारों को जानने और उनके लिये आग्रह करने लग गयी थी। पहिले तो आँख मलते २ उठी थी, इस लिये उस का स्वर भी अस्पष्ट और धीमा था, फिर ज्यों २ नींद दूर होती गयी शब्द भी स्पष्ट और गम्भीर होता गया। पूर्ण जागृति की अवस्था में क्या २ हुआ, यह आगे प्रकट होगा।

जातीय सभा के पहिले वर्ष की यही कार्य्यवाही है। यह कुछ कम नहीं है। चीन सर्कार से कैबिनेट का वचन ले लेना बड़ी भारी बात थी। सभा से और मन्त्रियों की प्रधान सभा से निरन्तर झगड़ा रहता था क्योंकि सभा बहुत से ऐसे कामों में हस्तक्षेप करती थी जो उसके अधिकार के बाहर थे। बात यह है कि पार्लिमेण्ट न होते हुए भी वह अपने को एक प्रकार का पार्लिमेण्ट ही समझती थी और शासन के सभी अंगों की देख रेख करना चाहती थी। मन्त्री लोग इसे अनधिकार चर्चा समझते थे। सभा ने अपनी ओर से एक तो यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि चीन से अफीम एकमात्र उठा देनी चाहिये, दूसरे यह कि जिन लोगों ने सर्कार के विरुद्ध कोई राजनीतिक आन्दोलन किया हो उन सब को क्षमा कर देना चाहिये, तीसरे यह कि चीनियों को जो अनिवार्य शिखा (pig-tail—सुअर की पूँछ) रखनी पड़ती है, यह प्रथा उठा दी जाय। (जब चीनियों को मञ्चुओं ने जीता था तो उनको दासत्व सूचक, स्त्रियों की भांति, लम्बी चोटी रखने की आज्ञा दी गयी थी)

होते हैं अतः प्रजा के प्रतिनिधि होते हैं और प्रजा की इच्छा के विरुद्ध काम नहीं कर सकते, क्योंकि यदि प्रजा इनसे असन्तुष्ट हो जाय तो पार्लिमेण्ट में कोई दूसरा दल प्रबल हो जाय और इनको अपना स्थान छोड़ना पड़े। जहाँ कैबिनेट की प्रथा नहीं है वहाँ पार्लिमेण्ट हो या न हो पर मंत्रियों को स्वयं राजा या सम्राट् [या सभापति] नियत करता है। यह मंत्री लोग पार्लिमेण्ट के सदस्य नहीं होते। अतः प्रजा के प्रतिनिधि भी नहीं होते। इनको पार्लिमेण्ट तो नियत करती ही नहीं और न वह इनको निकाल सकती है, इसलिये यह लोग उसकी परवाह भी नहीं करते। इनका मुख्य उद्देश्य राजा की इच्छा के अनुसार काम करना होता है, प्रजा की इच्छा के अनुसार नहीं। चीन की प्रधान मंत्री सभा में इसी राजनियुक्त प्रकार के ही मंत्री थे, जिन पर प्रजा का कोई दबाव नहीं था।

दे रहे हैं। उस को फाँसी देते ही एक छोटासा बलवा हुआ, शीघ्र ही दबा दिया गया।

नवयुवक या विद्रोही दल का नाम पर वह को मिंग तोंग था। इसका उद्देश्य जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, चीन में प्रजातन्त्र स्थापित करना था। एक नरम दल भी था। इसको 'पाव हुआग हवाइ' कहते थे। इसके कुछ नेताओं से सर्कार रुष्ट थी। उनके अनुयाइयों ने क्षमा की प्रार्थना की परन्तु उन की प्रार्थना स्वीकृत न हुई फल यह हुआ कि वह भी विद्रोही दल में जा मिले।

यह कोई नवीन बात नहीं है। 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' ऐसा बहुधा देखा गया है कि शासक गण अपने दुराग्रह से अपने सहायकों को भी रुष्ट करके अपने शत्रुओं का बल बढाते हैं।

यह विद्रोही दल सामान्य संस्था न थी। यह एक गुप्त सभा थी जिसका संगठन अत्यन्त सुदृढ़ था। अमेरिका, यूरोप, जापान, भारत,—पृथ्वी के सभी बड़े देशोंमें इसकी शाखाएँ थी, अतः इसको सारी पृथ्वी से आर्थिक सहायता मिल सकती थी और यदि इसका कोई सदस्य कभी आपत्ति में पड़जाता तो वह एक देशसे दूसरे देश बड़ी सुगमता से जा सकता, और जहाँ जाता वहा उसको सहायक और रक्षक मिल जाते। इससे सहानुभूति रखने वाले विदेशी भी बहुत थे। इस संस्था के नेता डाक्टर सुन यत सन थे। इस महापुरुष की जहाँ तक प्रशंसा की जाय थोड़ा है। अंग्रेजी में इसकी एक जीवनी है। मैं उस में से ही कुछ वाक्य उद्धृत करता हूं –

"An unkind thought, far less an unkind word, is foreign to his nature, a keen regard for the feelings of those around him is apparent in his every word and deed, unselfishness to a degree undreamt of amongst modern men, a living expression of the Sermon on the Mount"

षष्ठ अध्याय ।

जागृति ।

राजा प्रजा में विरोध और वैमनस्य बढ़ता ही गया। रूस जापान की लड़ाई के पीछे यह दोनों राष्ट्र मित्र हो गये थे। १९१० में आपस में एक प्रकार का शर्तनामा करके इन्होंने मंचूरिया आपस में बाँट मा लिया। १९११ में रूस ने मंगोलिया पर हाथ बढ़ाया पर मंचू सर्कार तटस्थवत् यह सब देखती रही। इसी से प्रजा उससे खिन्न थी। राजकुमार सुन निश्चिन्त थे। उन दिनों जातीय सभा की बैठक बन्द थी, सदस्य अपने २ घर गये हुए थे। कोई बक २ करने वाला भी न था इससे उनको और छुट्टी थी। इस छुट्टी से एक लाभ तो उन्होंने यह उठाया कि अपने को चीन की सारी सेनाओं और जहाजी बेड़ों का सेनापति और अपने भाई को उप-सेनापति नियत कर दिया। इससे प्रजा की रोषाग्नि और भड़क उठी।

इस आग की पहिली चिनगारी कैंटन नगर में देख पड़ी। वहाँ किसी ने फूचा नामक एक तातारी सेनापति को मार डाला। चीन सर्कार ने यह प्रमाणित करना चाहा कि इस हत्या का कोई राजनैतिक महत्व नहीं है वरन् यह घरेलू द्वेष में की गयी है, पर घातक यह कहता था कि मैं नवयुवक दल का सदस्य और डाक्टर सुन-यतसन का अनुयायी हूँ और मैंने फूची को राजनैतिक कारणों से मारा है। फाँसी मिलने के कुछ ही काल पहिले उसने कहा "मैं शीघ्र ही मरता हूँ परन्तु फिर आऊँगा और तब मैं उन लोगों को नाश करूंगा जो प्रजा को यह कष्ट

मे निकाले जाकर यहाँ तक ।* ऐसा प्रतीत होता था कि सारी पृथ्वी म अब इनके लिये कहीं विश्राम लेने का स्थान नहीं है " यह वीर पुरुष न घबराया।

"किसी देश में वह सुरक्षित न थे, और वर्षों तक पृथ्वी का ऐसा कोई भाग न था जहाँ इनके लिये निर्दय रीति से मार डाले जाने की आशंका न रही हो"

इस से यह पता चलता है कि वह व्यक्ति कैसा प्रभावशाली रहा होगा जिसको मारने के लिये चीन सर्कार को इतना प्रबन्ध करना पड़ा और फिर भी सफलता न हुई। साथ ही यह भी सिद्ध है कि जो राजनैतिक नेता ऐसा निर्भय, निष्कपट, निःस्वार्थ होगा उसकी सफलता अवश्यमेव होगी। कोई प्रबल से प्रबल गवर्नमेंट उसका कुछ नहीं कर सकती।

पीछे से जब विद्रोह बढ़ा तो खूनखराबी भी हुआ पर स्वयं डाक्टर सुनयतसन इस बात को पसन्द नहीं करते थे। उनका सिद्धान्त यही था कि यदि चीन की प्रजा एक हृदय होकर उठ खड़ी हो तो बिना रक्तपात के ही उसकी विजय होगी।

चीन सर्कार ने इनको पकड़ाने या मारने वाले के लिये १,५००,०००) पन्द्रहलाख) रुपये का पुरस्कार रक्खा था। एकबार उसे सफलता भी होते २ रह गयी। १८९६ में सुनयतसन लण्डन में थे। कुछ चीनियों ने इनको धोखा देकर पकड़ा दिया और यह चीनी लिगेशन में (जिस घर में चीनी राजदूत रहता था) कैद कर लिये गये। इस बात का पता लिगेशन के एक अँग्रेज नौकर को लगा। उसकी स्त्री बड़ी उदार थी। उसने सन के मित्र डाक्टर कैण्टली (यह सज्जन अंग्रेज़ हैं) के पास एक पत्र भेजा। डर के मारे उसने अपना हस्ताक्षर नहीं किया। डाक्टर कैण्टली ने इस बात की सूचना अंग्रेज सर्कार को दी कि लण्डन में एक ऐसी बात हो गयी जिससे अंग्रेजों का सदा अपमान होगा। परिणाम यह हुआ कि सन छूट गये। जिन चीनियों ने इनको धोखा देकर पकड़ाया

He aws listened to in China because of "the transparent honesty of the man, his manifest patriotism, the simplicity of his character, the readiness to endure all for his country's sake, even torture and death Persecuted, imprisoned slighted, a price set on his head, stamped as an outcast and turned out of home and country, refused shelter now by one nation, now by an other, until the wide world seemed to afford no place of safety where he could find rest" "Under no flag was he safe nor in the uttermost parts of the earth, for a period of well nigh twenty years, could he feel that a cruel death was not imminent"

"कठोर शब्द की तो बात दूर रही, कठोर विचार भी उनके स्वभाव के विरुद्ध है, उनके प्रत्येक बात और काम से यह टपकता है कि उनको दूसरों का कितना ध्यान रहता है, उनमें जितनी निस्वार्थता है उसका आजकल लोग स्वप्न भी नहीं देख सकते, ये पर्वत पर के सदुपदेश की जीवित मूर्ति है" [यह उपदेश ईसाने अपने शिष्यों को दिया था—उपदेश वस्तुत बड़ा ही दिव्य है।]

"उनकी प्रत्यक्ष ईमानदारी, उनकी स्पष्ट देशभक्ति, उनका सरल आचरण, उनका देश के लिये सब कुछ—अत्यन्त शारीरिक कष्ट और मृत्यु तक—सहने के लिये सदैव प्रस्तुत रहना"—इन्हा कारणों से चीन में लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे।" सताये जाकर, कैद किये जाकर, अपमानित किये जाकर, उनके सिर के लिये इनाम रक्खे जाने पर, घर से, देश से, समाज से बहिष्कृत होकर, जिस २ देश में शरण के लिये जाते नहीं

चुनते थे। हमारी समिति की शाखाएँ प्रत्येक प्रान्त में थीं। हमारे अधिवेशन भिन्न २ घरों में होते थे और हम सभी स्थान बराबर बदलते रहते थे। प्रत्येक ज़िले के कस्बों में तीस या चालीस केन्द्रस्थान थे। प्रत्येक केन्द्र में कम से कम १००० मनुष्य इशारा पाते ही बलवा करने और ज़िले का काम अपने हाथों में ले लेने के लिये प्रस्तुत थे। ज़िलों में समाचार आदि मनुष्यों द्वारा आते थे और हमारा सब व्यवहार मौखिक (लिख कर नहीं) होता था। प्रत्येक ज़िले में हमारे अनुयाइयों के ऐसे समूह थे जिनको विधिपूर्वक शासन करने की शिक्षा दी गयी थी। यह लोग इशारा पाते ही पदों को लेकर निर्दिष्ट रीत्यनुसार काम करने के लिये तय्यार रहते थे"। इस संक्षिप्त वर्णन से ही पता चलता है कि यह संस्था कितनी कार्य्यकुशल और सुसंगठित थी।

अस्तु, अपने वचनानुसार चीन सर्कार ने एक कैबिनेट और प्रिवी-कौंसिल भी स्थापित करदी, पर इस से भी शान्ति न हुई। होती कैसे? जो काम सर्कार करती थी अधूराही करती थी। कैबिनेट का तो नाम हुआ पर उस में राजवंश के कई राजकुमारों को स्थान दिया गया और एक अत्यन्त अनुदार मंचू सरदार, राजकुमार चिंग, प्रधान मंत्री बना दिये गये और उनको यह अधिकार दे दिया गया कि और मंत्रियों के जिस निर्णय को चाहें पलट दें। इस का तात्पर्य्य यह हुआ कि कैबिनेट के हाथ में वस्तुतः बहुत कम अधिकार रहा। सच्चा और पूरा अधिकार अब भी राजवंश के ही हाथ में रहा।

इन्हीं दिनों उत्तरी चीन में नदियों में इतनी बाढ़ आई कि कई गाँव बह गये और खेती नष्ट होगयी। डकैती बढ़ गई। प्रजा ने जैसा कि सर्वत्र होता है, इन बातों के लिये भी सरकार को ही दोषी ठहराया, यद्यपि वस्तुतः उसका कोई अपराध नहीं था।

इसी समय एक और छोटी सी बात खड़ी हो गयी। बात सचमुच छोटी ही थी। उसका महत्व कुछ भी न था पर वही अन्तिम विद्रोह का

था उनमे से दो को अपने घृणित कार्य्य पर ऐसी लज्जा आयी कि उन्होंने आत्महत्या करली ।

डाक्टर सन ने अपनी गुप्त सभा की कार्य्य-शैली का कुछ वर्णन किया है। वह अत्यन्त रोचक है। "we had a head, a chief and a body of leaders, all earnest, intelligent, courageous men. They were elected, according to constitutional principles, by a body of us who met, necessarily in Secret We had a branch of our society in every province Our meetings of the leaders were held at various houses, the rendezvous, being constantly changed Between thirty and forty centres were established in the various towns of each districts where members were ready to rise at a given moment to the number of at least 1000 in each centre, to take control of the public affairs of the district communication with each of these districts was made by the employment of messengers Our communications were by word of mouth We had elected bodies of our followers who had been taught a system of constitutional rule for each district, all ready to take office at a given signal and put the System into practice"

"हमारे प्रधान, नायक और नेता सभी उत्साही, बुद्धिमान और साहसी मनुष्य थे। हम लोग गुप्त रूप से मिलकर इनको नियमानुसार

चुनते थे। हमारी समिति की शाखाएँ प्रत्यक प्रान्त में थीं। हमारे अधिवेशन भिन्न २ घरों में होते थे और हम सभी स्थान बराबर बदलते रहते थे। प्रत्येक जिले के कसबों में तीस या चालीस केन्द्रस्थान थे। प्रत्येक केन्द्र में कम से कम १००० मनुष्य इशारा पाते ही बलवा करने और ज़िले का काम अपने हाथों में ले लेने के लिये प्रस्तुत थे। ज़िलों मे समाचार आदि मनुष्यों द्वारा जाते थे और हमारा सब व्यवहार मौखिक (लिख कर नहीं) होता था। प्रत्येक जिले में हमारे अनुयाइयों के ऐसे समूह थे जिनको विधिपूर्वक शासन करने की शिक्षा दी गयी थी। यह लोग इशारा पाते ही पदों को लेकर निर्दिष्ट रीत्यनुसार काम करने के लिये तय्यार रहते थे"। इस संक्षिप्त वर्णन से ही पता चलता है कि यह संस्था कितनी कार्य्यकुशल और सुसंगठित थी।

अस्तु, अपने वचनानुसार चीन सर्कार ने एक कैबिनेट और प्रिवी-कौंसिल भी स्थापित करदी, पर इस से भी शान्ति न हुइ। होती कैसे? जो काम सर्कार करती थी अधूराही करती थी। कैबिनेट का तो नाम हुआ पर उस में राजवंश के कई राजकुमारों को स्थान दिया गया और एक अत्यन्त अनुदार मंचू सरदार, राजकुमार जिंग, प्रधान मंत्री बना दिये गये और उनको यह अधिकार दे दिया गया कि और मंत्रियों के जिस निर्णय को चाहें पलट दें। इस का तात्पर्य यह हुआ कि कैबिनेट के हाथ में वस्तुत बहुत कम अधिकार रहा। सच्चा और पूरा अधिकार अब भी राजवंश के ही हाथ में रहा।

इन्हीं दिनों उत्तरी चीन में नदियों में इतनी बाढ़ आई कि कई गाँव बह गये और खेती नष्ट होगयी। डकैती बढ़ गई। प्रजाने जैसा कि सर्वत्र होता है, इन बातों के लिये भी सरकार को ही दोषी ठहराया, यद्यपि वस्तुत उसका कोई अपराध नहीं था।

इसी समय एक और छोटी सी बात खड़ी हो गयी। बात सचमुच छोटी ही थी। उसका महत्व कुछ भी न था पर वही अन्तिम विद्रोह का

कारण हो गई। लोग सर्कार से रुष्ट तो थे ही, एक बहाना मिल गया। सर्कार भी समय पर न समझ सकी, इससे भूल होती ही गई। उधर नवयुवक दल ने इस अवसर को अपने लिये ईश्वर का साक्षात् प्रसाद समझा, उनकी चालोंने गवर्न्मेंएट को और भी घबरा दिया और जो बात थोड़े में ही निपट जाती वह इतनी बढ़ गई कि गवर्नमेंट विचारी को घातक ही होकर रहा।

चीन सर्कार का एक विभाग था जिसका काम रेल, तार, नहर, पुल, सड़क आदि का प्रबन्ध करना था। उस समय चीन में रेल का प्रचार अच्छा था। प्रत्येक प्रान्त अपनी सीमा में रेल का प्रबन्ध अपने हाथ में रखता था। इस काम के लिये रुपया दो प्रकार से आता था। कुछ तो धनाढ्य, सेठ साहूकार चन्दे के रूप में देते थे और कुछ, लोगों की माल गुजारी के हिसाब से टैक्स के रूप में लिया जाता था। प्रान्त के रुपये से जो रेल चलती थी वह प्रान्त की सीमा में ही रहता था और उससे जो लाभ होता था वह भी प्रान्तीय कोश में जाता था। यों कहना चाहिये कि प्रत्येक प्रान्त एक रेलवे कम्पनी था। पर इन रेलों का प्रबन्ध ठीक न था। मनमाना अन्धेर होता था। बेईमानी की कोई सीमा न था। बड़े २ सर्कारी कर्म्मचारी जी खोल कर रुपया खाते थे।

इस कुप्रबन्ध को दूर करने के लिये उक्त विभाग के सभापति ने एक विदेशी कम्पनी से (जिस में, अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन और अमेरिकन साहूकार सम्मिलित थे) ६० लाख पाउंड (९ करोड़ रुपया) ऋण लिया और शीघ्र ही ४० लाख पौंएड (६ करोड़ रुपया) और लेने का विचार प्रकट किया। यह रुपया रेलों के लिये व्यय किया जानेवाला था। इसके पहिले चीन सर्कार उसी कम्पनी से १ करोड़ पौंड (१५ करोड़ रुपया) ५ रुपये सैकड़े व्याज पर ले चुकी थी। यह पहिला ऋण सिक्के के सुधार के लिये था। इसकी भी बड़ी आवश्यकता थी। चीन में डालर नाम के १६ प्रकार के भिन्न २ तोल और मूल्य के सिक्के चलते थे, तांबे के सिक्के

का तो पूछना ही क्या था। अकेले पकिंग में ५ प्रकार के डॉलरों का प्रचार था।

अस्तु सर्कार का यह प्रस्ताव था कि जितनी ट्रंक लाइने हैं (अर्थात् वह लाइने जो एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती है) सर्कार के हाथ में रहें और छोटी २ शाखा लाइन पूर्ववत् प्रान्तों के हाथ में रहें। सरकार का यह कहना कुछ असगत नहीं था। प्रधान लाइनों पर सर्कार का अधिकार रहना ही अच्छा है। बहुत से देशों में ऐसा ही होता है। रेलें केवल सामान्य यात्रियों और सामग्रियों के वहन के लिये नहीं हैं युद्ध आदि के समय में उनका राजनैतिक महत्व भी होता है। यदि देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने के लिये भिन्न २ प्रान्तों द्वारा शासित रेलों से काम लेना हो तो आवश्यक कामों में बड़ी अड़चन पड़े। अत इसमें सन्देह नहीं कि सर्कारी प्रस्ताव न्याय्य था।

परन्तु जनता रुष्ट तो 'पहिले ही' से थी, उसने इसका उलटा ही अर्थ निकाला। हुनान प्रान्त में १०,००० मनुष्यों ने एकत्र होकर सूबेदार को सर्कार के पास यह प्रार्थना भेजने पर विवश किया कि यह प्रस्ताव अभी स्थगित किया जाय। चारों ओर पुकार मच गयी। जातीय सभा ने सर्कार से विशेष अधिवेशन करने की प्रार्थना की पर यह प्रार्थना स्वीकार न हुई। जिन लोगोंने इन प्रान्तीय रेलों के लिये चन्दे दिये थे वह घबराये कि सर्कार हमारा रुपया मार लिया चाहती है और हमारे रुपयों से बनी रेलों से आप लाभ उठाना चाहती है। जिन बेईमान लोगों को अभी तक इन रेलों से अनुचित लाभ होता था उन्होंने गुप्त रूप से इस आन्दोलन को और भड़काया। चीन में किसी सर्कारी काम का आज तक इतना विरोध हुआ ही न था। सारे समाचार पत्र विरोध पर तुले थे। देशभक्ति, स्वार्थ नाता, अज्ञान का ऐसा विचित्र सम्मिश्रण हुआ कि जिसके आगे तर्क की चलने ही न पाती थी।

सर्कार ने लोगों का [illegible]

उनके प्रबन्धकर्ताओं की अनुभवहीनता, अयोग्यता और बेईमानी, कोई छिपी बात न थी। यह भी प्रकट था कि यदि सर्वत्र एक सर्कारी शासन हो जाय तो यह सब गड़बड़ बहुत कुछ दूर हो जायगा। यह भी दिखलाया गया कि लोगों से रेल के लिये जो टैक्स लिया जाता है वह वस्तुतः अन्याय है और प्रजा को लूटना है।

परन्तु क्रोध की दशा में तर्क का वश नहीं चलता। प्रजा की ओर से सारे समाचार पत्र सर्कार के शत्रु हो रहे थे। उन्होंने यह उत्तर दिया कि यद्यपि रेल के लिये टेक्स लेना एक प्रकार का अन्याय है पर विदेशियों से ऋण लेना और उसको व्याज के साथ लौटाना और भी घोर अन्याय है। टैक्स का द्रव्य प्रजा से लिया जाता है पर उसका लाभ देश को ही होता है, सर्कार जो प्रस्ताव कर रही है उसके अनुसार देश के द्रव्य से विदेशियों को लाभ होगा। अतः यह उस से भी बड़ी लूट है।

सरकार का सारा समझाना व्यर्थ गया। अशान्ति बढती ही गई। अन्त में लोगों के भय को दूर, करने के लिये एक युक्ति निकाली गयी। जिस प्रकार भारत में युद्ध ऋण के बारबाण्ड चल रहे हैं उसी प्रकार के रेलवे-बाण्ड निकाले गये। जिस २ ने प्रान्तीय रेलों में जितना २ द्रव्य दिया था उस २ का उतने २ के बाड के कागज देने का विचार हुआ। इनपर ६ रुपये सैकड़े व्याज देने का भी वचन दिया गया। इसका तात्पर्य्य यह था कि जिन लोगोंने रुपया दिया था वह यह न समझें कि रुपया डूब जायगा या उस से कोई लाभ न होगा।

परन्तु इस अत्यन्त न्याय्यबात का भी कुछ प्रभाव न हुआ। अधिकांश प्रान्तों ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार न किया।

यह विचित्र अनवस्था हुई। जो गवर्नमेंट बुरे स बुरे काम कर डालती थी और कोई चूँ न करता था आज उसी के एक अत्यन्त न्याय्य, युक्तिसंगत और उदार काम का इतना विरोध! सम्राट् के अभिभावक राजकुमार चुन और उनके सारे परामर्शदाता अमात्य और मन्त्री किंकर्त-

भी विमूढ़ और अवाक रह गये। प्रजा में एक ऐसी शक्ति सञ्चारित हो गयी थी जिसका उन्हें स्वप्न में भी ध्यान न था। विरोध धीरे २ एक ऐसा रूप पकड़ता जा रहा था जिसके आगे उनकी बुद्धि कुण्ठित हो रही थी और उनका धैर्य मरा रहा था।



सप्तम अध्याय ।



विद्रोह का आरम्भर ।

अभी तक कोई खुला विद्रोह नहा हुआ था पर विद्रोह होने में देर भी न थी । कभी २ वर्षा ऋतु में जब आकाश बादलों से घिर जाता है, बादल बिजली से भरे से होते हे पर कुछ देर तक ऊपर से शान्ति प्रतीत होती है। देखते ही देखते किसी एक अश में बिजली चमकती है और फिर सारा मेघमण्डल बिजलीका एक विस्तृत चादर हो जाता है। गर्मीमें बन क सभी वृक्ष सूखे होते हैं पर आग सर्वत्र एक साथ नहीं लगती । किसी एक कोनेमें पहिली लपक उठती है और फिर क्षण भर में सारा बन अग्निकुण्ड हो जाता है । बस ठीक यही दशा चीन की थी । सारे देश में अशान्ति फैली हुई थी । सारी प्रजा क्षुब्ध हो रही थी पर ऊपर से इसे आन्तरिक हलचल का कोई चिन्ह नहीं देख पड़ता था । पहिली चिंगारी की देर थी।

यह ज्वाला पहिले स्जेचुआन मे फुटी । स्जेचुआन चीन का सब से पश्चिमा प्रान्त है। यह सब से समृद्ध भी है। इसे 'चीन का उद्यान' कहते हैं। इस की भूमि उर्वरा है और खनिज सम्पत्ति से परिपूर्ण है। विदेशियों की बहुत दिनों से इस पर दृष्टि पड़ रही थी। वह चाहते थे कि किसी तरह यह सम्पत्ति अपने हाथ लगे, कम से कम इसका लाभ हम उठावें। इसका सबसे सीधा उपाय यह था कि स्जेचुआन में रेल निकाली जाय और उसका प्रबन्ध इन लोगों (विदेशियों) के हाथ मे हो । इस बात का इन्होंने भरपूर प्रयत्न किया, पर इनके दुर्भाग्य से उस प्रान्त के लोग समझदार थे। इन लच्छेदार बातों में न आये । हा, उन्होंने स्वय अपनी

रेल निकाली। रेलके लिये रुपये का संग्रह, जैसा कि षष्ठ अध्याय में दिखलाया गया है, कुछ तो चन्दे से और कुछ कर से हुआ। यह लाइन अर्ध-सर्कारी थी।

इसका प्रबन्ध भी पहिले २ अन्य प्रान्तीय लाइनों की भांति सदोष था। इसका भी बहुत सा द्रव्य कार्य्यकर्ताओं की अकुशलता और बेईमानी से नष्ट हो रहा था, पर धीरे २ स्वत सुधार हो चला था। शिक्षित समाज जिसमें कई लोग ऐसे भी थे जो विदेशों से शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे, इस ओर ध्यान देने लगा था और आशा थी कि कुछ काल में बिन सर्कारी हस्तक्षेप के भी काम सुधर जायगा।

बीच में यह झगड़ा खड़ा होगया। अन्य प्रान्तों की भांति यहां भी लोगों ने सर्कार की न्याय्य बातों का विरोध किया। इस विरोध को सामान्य प्रजा की ओर से बड़ी पुष्टि मिली। सभी देशों में ऐसा होता है कि सुशिक्षित लोग राजनैतिक समस्याओं को अशिक्षितों की अपेक्षा अधिक समझते है और वही राजनैतिक आन्दोलनों के नेता हुआ करते है। यूरोपियनों को यह कहने की लतसी पड़ गयी है कि पूर्वीय देश (जैसे चीन, भारत, मिश्र आदि) म सामान्य प्रजा बिचारी कुछ नहीं चाहती वह चुपचाप पड़े रहने में ही सन्तुष्ट है पर थोड़े से पढ़े लिखे लोग राजनैतिक आन्दोलन करके सर्कार को भी तंग करते है और प्रजा को भी क्षुब्ध करते हैं।

यह इन कहने वालों का झूठा अपवाद है। सभी देशों में नेता प्राय वही होते है जो सुशिक्षित हैं, जिनकी विवेक शक्ति परिमार्जित है, जिनको ऐतिहासिक और राजनैतिक ज्ञान है। पर केवल नेता कुछ नहीं कर सकता। अनुगामी भी चाहिये, और अनुगामी वही होता है जिसको नेता के विचारों के साथ सहानुभूति होती है। अनुचर सूक्ष्म विचार नहीं कर सकता। जिस दिन उस में यह योग्यता आ जायगी उस दिन वह आप ही नेता हो जायगा, पर स्थूल विचार वह भी कर

सकता है, मैं सुखी हूं या दुःखी इतना वह भी समझ सकता है। यदि ऐसा न हो तो दो चार पागलों को छोड़ कर कोई किसी नेता के कहने से अपनी हानि, यहां तक कि प्राणान्त, कराने के लिये अग्रसर न हो।

चीन के सुशिक्षित लोग नेता थे और साधारण लोग उनके अनुगामी थे। इस में सन्देह नहीं कि रेल के विषय में, जानकर या भूल से नेता लोग अयुक्त बात कर रहे थे पर प्रजा के लिये यह एक उपवार्ता थी। महत्त्व की बात यह थी कि तत्कालीन चीन सर्कार ठीक नहीं थी। नेताओं का इसी बात पर आग्रह था और प्रजा भी इस बात को समझती थी। कड़े २ टैक्स, आये दिन का अकाल लूट, मार की बढ़ती—इन बातों से यह स्पष्ट था कि सर्कार अपना कर्तव्य पालन नहीं कर रही थी।

रेलवे विषयक मतभेदने लोगों के बहुत दिनों से दबे हुए भावों को प्रकट होने का एक मार्ग बतला दिया। देखते ही देखते इस विरोधने व्यापक रूप पकड़ा और चीन से मंचूशासन को निकाल कर ही कल लिया।

विरोध का पहिला रूप यह हुआ कि 'चेंगतू रेलवे लीग' नाम की एक समिति खुली। इसका उद्देश्य सर्कार की रेलवे नीति का विरोध करना था।

यह कहना कठिन है कि इस विरोध ने पहिले स्जेचुआन में ही क्यों सिर उठाया। एक मत तो यह है कि स्जेचुआन वाले सचमुच केवल रेल के विषय में ही असन्तुष्ट थे, पीछे से जब यहां झगड़ा आरम्भ हो गया तो राजद्रोहियोंने इस अवसर से लाभ उठा कर इस विरोध को व्यापक कर दिया। दूसरा पक्ष यह है कि स्जेचुआन में जो कुछ हुआ वह सोच विचार कर किया गया था और राजद्रोहियोंने अपने सच्चे उद्देश्य को कुछ काल के लिये छिपाकर यह रेलवे आन्दोलन उठाया था। यह द्वितीय पक्ष ही समीचीन प्रतीत होता है। राजद्रोही

सेनापति के निम्नलिखित शब्दों से इसका समर्थन भी होता है। "On the defeat of the Republican forces at Canton (in May), the military Government was moved to the west and subsequently successfully established in Szechuan" "मई में राजतन्त्र की सेनाओं के कैरटन में हार जाने पर, सैनिक शासन पश्चिम की ओर हटा दिया गया और पीछे से सफलता पूर्वक स्जेचुआन में स्थापित किया गया।"

(मई में इन लोगों ने कैरटन का सर्कारी शस्त्रागार छीनना चाहा था पर सफल नहीं हुए।)

जो कुछ हो, लोकमत सर्कार के विरुद्ध था, कैबिनेट अर्थात् मन्त्रिसभा को जो रूप दिया गया था वह भी सन्तोषजनक नहीं था, इधर स्जेचुआन की प्रान्तीय सभा के सदस्य बड़े ही उत्साही और देशभक्त थे, यह लोग पहिले ही से सर्कार से इस बात पर लड़ रहे थे कि सभा को प्रान्तीय कोष पर अधिकार दिया जाय और वाइसराय आदि बड़े २ कर्म्मचारियों के वेतन कम किये जायें। रेलवे आन्दोलन के छिड़ते ही सभा ने रेलवे लीग का पक्ष लिया और सम्राट् से प्रार्थना की कि रेलवे लाइनों के विषय में जो नयी नीति निर्धारित की गयी है वह अभी काम में न लायी जाय। तत्कालीन वाइसराय वाग जेन-वाइ भी इन विचारोंसे सहमत थे अतः उन्होंने यह प्रार्थना पेकिंग भेज दी और इसका समर्थन भी किया। पर सुनता कौन, सर्कारी सूत्रधारों की बुद्धि मारी गयी थी। प्रार्थना तो अस्वीकृत हुई ही, उलटे समर्थन करने के कारण वाइसराय पर डाँट पड़ी।

इस सर्कारी आज्ञा का बुरा प्रभाव पड़ा। जनता का क्रोध और भी भड़क उठा। एक समाचारपत्रने इस विषय में लिखा "A coercive measure may succeed for a while, but the heart of the people cannot be won in that way The people will not tremble and submit to whatso-

ever the Throne may indulge in, as they did in times gone by, without a struggle" 'कुछ कालके लिये बलप्रयोग में सफलता हो सकती है पर इस प्रकार प्रजा का हृदय वशमें नहीं किया जा सकता। अब पहिले की भाँति लोग सम्राट् की प्रत्येक बात के सामने चुपचाप काप कर सिर नहीं झुकाएँगे।

बात यही थी पर सर्कार अन्धा हो गयी थी। यह अन्धापन स्वेच्छाचारी शासनों का पुराना और अनिवार्य्य रोग है। इस प्रकार के शासन अपने को सैदव सर्वशक्तिमान समझते हैं। इनकी समझ में जनता बच्चों के समान है। कभी रोती है, कभी हँसती है, कभी मुँह बिगाड़ती है, कभी क्रोध दिखलाती है, पर सचमुच कर कुछ नहीं सकती। जब जी में आया उसे प्रसन्न करने को उसकी दो एक बाते मान ली, जब जी में आया दो तमाचे लगाकर उसका मुह बन्द कर दिया। यह इन शासनों की भूल है। जनता तभी तक दुर्बल है जब तक वह अपने को दुर्बल मानती है। जिस दिन वह हनुमान की भाँति अपनी शक्तियों का स्मरण करती है कोई शासन उसका कुछ नहीं कर सकता। पर इतिहास के सहस्र २ बार कहने पर भी स्वेच्छाचारियो का आंख नहीं खुलता। वह प्रजा की इच्छाओं को रौंदते चले जाते हैं और मनमुटाव बढ़ाते जाते हैं यहा तक कि जो वैमनस्य आरम्भ मे थोड़े से मीठे शब्दों से दूर हो जाता वह पीछे से अमिट हो जाता है। हानि प्रजा का भी होती है पर अधिक हानि और अन्तिम हार शासन की ही होती है। बहुत छेड़ने और सताने से कीचड़ में का कीड़ा भी काटनेका प्रयत्न करता है। मनुष्य तो मनुष्य ही है। उसको नि सहाय, नि शस्त्र, निर्बल, निर्धन, समझ कर निरन्तर दबाये रखने का प्रयत्न करना आग के साथ खेलना है, फ्रास की राजक्रान्ति, अमेरिका की राजक्रान्ति, रूस की राजक्रान्ति, चीन की राजक्रान्ति—यह सब इसी बात के प्रमाण हैं।

लीग ने आन्दोलन का कार्य और उत्साह से करना आरम्भ किया।

उसका प्रत्यक्ष उद्देश्य तो यही था कि लोगों को रेलवे विषयक सच्ची व्यवस्था बतलायी जाय पर भीतर २ वह और राजनैतिक आन्दोलन भी कर रही थी।

अगस्त में प्रान्तीय रेलवे के हिस्सेदारों की एक सभा हुई। इस सभा ने सर्कार से यह प्रार्थना की कि प्रान्तीय रेलवे कम्पनियों का मूलधन (जो अब नयी नीति के अनुसार सर्कार ने ले लिया था) लौटा दिया जाय, लाइनों का प्रबन्ध फिर पूर्ववत प्रान्तों को सौंप दिया जाय और बाहर से जो ऋण लेने का विचार था वह छोड़ दिया जाय। यह कहना अनावश्यक होगा कि सर्कार ने इनमें से एक बात भी न मानी।

इसके दो चार दिन पीछे लोगों ने एक नयी बात निकाली। उसने कहा कि सर्कार ने हमारे रुपये पर ६ सैकड़ा ब्याज देना स्वीकार किया है (षष्ठ अध्याय देखिये) पर न जाने कब देगा, इससे अच्छा यह होगा कि हम लोग ब्याज का द्रव्य आप ही वसूल कर लें। इसका सबसे सुगम उपाय यह है कि भूमि का कर (मालगुज़ारी) सर्कारी कोष में न जाने देकर उसे हम अपने ही हाथ में रखलें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये प्रबन्ध कारिणी समितियाँ (Administrative chambers) खोला गया। इन समितियों के कार्यक्रम के लिये निम्न लिखित नियम बनाये गये —

१ सब कार्यकर्ता अवैतनिक होंगे।

२ यदि निवासियों में से कुछ लोग सर्कार का पक्ष लें तो उनका इस प्रकार विरोध करना होगा —

(क) उनका नाम और देशहित विरोधी कृत्य प्रकाशित कर।

(ख) समाज में उनको जो २ अधिकार प्राप्त हैं उनको कम कर।

(ग) उनका प्रान्तीय सभा आदिके लिये सदस्योंके चुनाव में सम्मति देनेका जो अधिकार है उसे छीन कर।

(घ) उनके लिये रहना असम्भव बनाकर।

(ङ) यदि उनके प्राण या सम्पत्ति पर कोई आपत्ति आवे तो उनकी किसी प्रकारकी सहायता न करे।

३ यदि सर्कारी कर्मचारी लीगके किसी सदस्यको पकड़ें तो उनका इस प्रकार विरोध किया जाय —

(क) बल पूर्वक प्रतिवाद करे।

(ख) बड़े कर्म्मचारियोंके पास निष्पक्ष जांचकी प्रार्थना करें।

(ग) उस व्यक्तिके अपराधके लिये समस्त लीगको उत्तरदायी घोषित करे।

४ यदि लीगका कोई सदस्य विपद्ग्रस्त हो जाय तो उसकी यों सहायता की जाय —

(क) उसको समुचित धन देकर।

(ख) उसके छुटकारेके लिये प्रयत्न करे।

(ग) उसके कुटुम्बका भरण पोषण करे।

५ यदि लीगके किसी सदस्यकी लीगकी सेनामें मृत्यु हो जाय तो उसका पूरा २ वृत्तान्त प्रकाशित किया जाय और उसका स्मारक इस प्रकार बनाया जाय —

(क) समारोहके साथ उसकी अन्त्येष्टि करे।

(ख) स्थानिक इतिहास में उल्लेख करे।

(ग) कासेकी मूर्ति बना कर।

(घ) रेलवेके कोषसे उसके कुटुम्बको १००० तेल देकर।

(ङ) उसके भाइयों और लड़को की शिक्षा दिलवाकर।

इन प्रबन्धकारिणी समितियों के सगठित होते ही, मालगुजारी का देना एकमात्र बन्द हो गया। वाइसराय चाओएर्ह फुगने हार मानकर पेकिंग में इस विषयकी रिपोर्ट भेजी।

यह स्पष्ट है कि अब बात गम्भीर हो गई। व्याख्यान देना, समाचारपत्रो में लेख लिखना, सभा समिति खोलना और बात है और

इस प्रकार सरकारका विरोध करना, एक प्रधान टैक्स रोक कर उसका स्वतंत्र प्रबन्ध करना, और बात है। ऐसा काम बिना अपने दायित्व को पूरा २ सोचे नहीं किया जाता क्यों कि ऐसा करना एक प्रकार से स्पष्ट शब्दों में सर्कार को ललकारना है। अभी तक जो कुछ हुआ वह आन्दोलन था, अब विद्रोह की नीव पड़ी। केवल टैक्स का न देना तो विद्रोह नहीं होता—यह तो सत्याग्रह आन्दोलन का भी एक अंग है पर टैक्स का स्वयं एकत्र करना और उसके व्यय आदि का प्रबन्ध करना एक नयी सर्कार स्थापित करना है और विद्रोह का अंग है।

महीना समाप्त होते २ इस आन्दोलन ने और प्रबल रूप धारण किया। व्यापारियों ने हड़ताल करके दूकाने बन्द करदीं, विद्यार्थियों की अनुपस्थिति से पाठशालाएँ बन्द हो गयीं। स्वर्गीय सम्राट् क्वांगह्यू, जिनके राजत्व काल में प्रान्तों को रेलवे सम्बन्धी अधिकार मिले थे, प्रजा के कृतज्ञता भाजन हो गये। स्थान २ पर उनके नाम पर फाटक और कीर्तिस्तम्भ बनाये गये। सामान्य मनुष्य तो इनके नीचे से निकल जाते थे पर सर्कारी कर्मचारियों को सवारी पर से उतर कर साष्टांग दण्डवत करना पड़ती थी। इस दण्डवत् में एक विपत्ति यह थी कि कभी २ लोग पीछे से धौल थप्पड़ भी कर दिया करते थे पर यह विचारे कुछ कर न सकते थे।

विद्यार्थियों ने आन्दोलन के प्रचार की एक विचित्र युक्ति ढूँढ निकाली उन्होंने एक प्रकार का 'जल तार' (river telegrams) चलाया। लकड़ी के टुकड़ों पर इस प्रकार के वाक्य "चेंगतू के सब कर्मचारी मारे गये। शस्त्र धारण करो। तुम्हारा सर्वनाश करने सेना आरही है" लिखे जाते और यह टुकड़े नदी में छोड़ दिये जाते। यह जहाँ २ किनारे जाकर लगते वहाँ २ के ग्राम वासी इन समाचारों को पढ़कर सतर्क हो जाते।

यह सब कुछ हुआ पर वाइसराय साहब हाथ पर हाथ रक्खे बैठे

रहे। वह इसे भी लड़कों का खेल ही समझते रहे। उनको विश्वास था कि चार दिन में लोगों का उत्साह आप ही ठण्डा हो जायगा। पर चीन की प्रधान सर्कार को इस प्रकार का भ्रम नहीं था। वह देख रही थी कि धीरे २ और प्रान्तों में भी अशान्ति बढ़ रही थी और यदि स्जेचुआन की आग शीघ्र न बुझी तो सारा देश जल उठेगा। अतः उसने वाइसराय को आज्ञा दी कि प्रान्तीय सभा के सभापति और उपसभापति पू तिएन-चुन और लो-हुन पकड़ कर मार डाले जायँ। वाइसराय ने पहिले तो इस आज्ञा का पालन कुछ दिनों तक टाला पर पीछे से उनकी समझ में भी यह बात आ गयी कि अधिक देर करना हानिकारक होगा। उन्होंने देखा कि बिना कड़ाई के काम न चलेगा। चुपके २ पुलिस का प्रबन्ध ठीक किया गया और लीग के कई रहस्यों का पता लगा लिया गया।

७ सितम्बर को लीग की एक सभा थी। सभा के समय सदस्यों के नाम वाइसराय का एक पत्र आया था। उसमें लिखा था कि यदि आप लोग कृपा करके यामन (वाइसराय का निवासस्थान) तक चले आवें तो सब बातों पर विचार हो जाय और विवाद बन्द हो जाय। यह लोग बात में आ गये और वहां चले गये। बस जाने की देर थी। सब के सब लोग पकड़ लिये गये। एक घण्टा बजाया गया। उसको सुनते ही सारी सड़कों पर सिपाही भर गये।

जब नगरवासियों को इस बात की सूचना मिली तो यामन के सामने भीड़ लग गयी। लोगों ने कहा कि हमारे नेताओं को छोड़ दीजिये, हम आन्दोलन बन्द किये देते हैं पर वाइसराय साहब के मस्तिष्क में तो विजय का मद चढ़ रहा था। सिपाहियों ने बन्दूकें चलाईं और सवारों ने भीड़ के बीच में घोड़े चलाये। लगभग १५ मनुष्य हताहत हुए। गत सम्राट् के नाम पर जो फाटक बने थे वह तोड़ दिये गये। यह घोषणा की गयी कि लीग तोड़ दी गयी है और उसके प्रधान नेता कैद कर लिये

गये हैं। व्यापारियों को तत्काल हड़ताल बन्द करके पूर्ववत् सब काम करना होगा।

नगरवासी विचारे भी डर गये थे, उन्होंने इन सब आज्ञाओं को चुपचाप मान लिया। दूकानें खुल गयीं सब काम धंधे होने लगे, लोग या रेलवे आन्दोलनका लोप हो गया। वाइसराय के हर्ष का क्या ठिकाना था। सैनिकों का राज था। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रजा का दुःसाहस सदा के लिये कुचल दिया गया। वाइसराय साहब ने एक बहुत लम्बी चौड़ी रिपोर्ट पेकिंग भेजी उस में लिखा गया कि विद्रोहियों से सात दिन और सात रात तक घमासान लड़ाई हुई अन्त में ७ सितम्बर को (जिस दिन नेता पकड़ गये थे) उनकी पूरी हार हुई। इस सरासर झूठी रिपोर्ट में और भी न जाने कितनी बातें नमक मिर्च लगा कर लिखी गयी थीं जिन से कि यह प्रतीत हो कि एक बड़ा भारी विद्रोह दमन किया गया है।

इधर वाइसराय साहब तो अपने आप को प्रशंसापत्र दे रहे थे। उधर विद्यार्थियों ने जाकर ग्रामीणों को उभारा। चीन में ही क्या, सभी देशों में देखा गया है कि ऐसे आन्दोलनों में विद्यार्थी ही अग्रसर होते हैं उनके शरीर में बल, मस्तिष्क में स्फूर्ति हृदय में उत्साह होता है बड़े होने पर मनुष्य गृहस्थी के झगड़े में पड़ कर जकड़ जाता है। उसका स्वातन्त्र्य जाता रहता है, विद्यार्थी स्वतन्त्र और निर्भय, निरपेक्ष और निर्द्वन्द्व होता है। वह आदर्शों और सिद्धान्तों के लिये प्राण निछावर करना साधारण बात समझता है। जिन लोगों के हृदय उदार उत्साहों से शून्य हैं वह विद्यार्थियों को 'स्वप्नद्रष्टा' कहते हैं सम्भव है विद्यार्थी स्वप्न ही देखता हो पर वह बहुधा अपने स्वप्नोंको सच्चा और प्रत्यक्ष कर दिखाता है, वह उन लोगों से कहीं श्रेष्ठ है जिनके मृत हृदयों में अपना ? दो कौड़ी की खाल की रक्षा से बड़ा या ऊंचा विचार कभी घर करने ही नहीं पाता।

विद्यार्थियों के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि दो चार दिनों के

भीतर ही सहास्रों ग्रामीणों ने आकर नगर को घेरा लिया। सिपाहियों का सामना करने की सामर्थ्य तो इनमें थी नहीं। जब २ लड़ाई होती बिचारे बुरी तरह हारते थे पर इनका साहस प्रशसनीय था। जितनी ही इनकी हार होती उतना ही इनका उत्साह और बढ़ता था। शहीदों का रक्त ही धर्म्म की पुष्टि करता है। इन ग्रामीणों से और चाहे कुछ न बन पड़ा पर इन्होंने नगर को चारों ओर से घेर लिया। देखा देखी एक जिले से दूसरे जिले जाते २ सारे प्रान्त में विद्रोह फैल गया। केवल प्रान्तीय राजधानी बैंगल में सर्कारी शासन की कुछ सत्ता प्रतीत होती थी- वह भी ऊपरी, वास्तविक नहीं। बहुत से सर्कारी सिपाही विद्रोही दल से जा मिले। इससे सर्कारी पक्ष और दुर्बल पड़ गया क्योंकि वाइसराय आदि बड़े कर्म्मचारी इस बात का ठीक २ निश्चय नहीं कर सकते थे कि कौन उनका सहायक था और कौन गुप्त शत्रु।

इधर विद्रोहियों का मार्ग भी निष्कण्टक नहीं था। बहुत से डाकू और लुटेरे, जिनका राजनीतिक बातों से कोई सम्बन्ध नहीं था, इस अराजकतावस्था से लाभ उठाकर प्रजा को सता रहे थे। यदि इनसे भी विरोध कर लिया जाता तो सर्कार का पक्ष प्रबल हो जाता। अत इनको मिलाये रखने का प्रयत्न करना पड़ता था। साथ ही यह भी देखना होता था कि यह प्रजा के साथ उत्पात न करके अपनी सारी शक्ति सर्कार के विरुद्ध ही लगावें। दूसरी कठिनाई यह थी कि इनके पास न तो धन था न कोई युद्ध-सामग्री थी, धन तो इन्होंने मालगुजारी जमा कर २ एकत्र कर लिया और इस रुपये से कुछ शस्त्र भी मोल लिये गये पर शस्त्र बेचने वाला कौन था। जो शस्त्र स्वय वहां बन जाते थे उनसे ही काम लेना पड़ता था और यह सामान्य लोहारों के हाथ के बनाये शस्त्र सर्कारी तोपों का भला क्या सामना करते।

पर इन लोगों के पास वह शस्त्र था जो सबसे अमूल्य है, जिसके होने से और सब शस्त्र आप से आप ही इकट्ठे हो जाते हैं, उस शस्त्र का नाम

है सच्चा देशप्रेम, निर्भयता, उत्साह, धैर्य्य, इस अनुपम शस्त्र के अंग हैं, देशप्रेम निज शस्त्र के बल को शतगुण कर देता है और शत्रु के बल को कुण्ठित कर देता है, सब से पहिली विद्रोही सेना का वर्णन पढ कर आश्चर्य होता है। उसके ५ विभाग थे —

(१) आफिसर—यह लोग प्राय खाकी वर्दी में थे।

(२) ऐसे सिपाही जिनके पास बर्छे और तलवारें थी।

(३) ऐसे सिपाही जिनके पास एयर गन (बच्चों के खेलने योग्य हवाई बन्दूकें) या बर्ड गन थीं (चिड़ियों के मारने की बन्दूक को बर्ड गन कहते हैं)

(४) ऐसे सिपाही जिनके पास केवल झण्डियाँ थी। (धन्य वीरो!)

(५) तोपखाना।

यह तोपखाना भी विचित्र था, इसमे तीन तरह की तोप थी, कुछ पुरानी तोपें तो इधर उधर के नगरों से उठा लायी गयी थी और कुछ मन्दिरों के बड़े घंटों और धूप कुण्डों (चीन मे बहुत से मठ मन्दिरों में धूप देने के लिये बड़े २ धातु के कुण्ड होते हैं) को गला कर ढाल ली गयी थी, तीसरे प्रकार की तोप सब से आश्चर्य जनक थी। बड़े २ पेड़ों के तने बीच से खोखले कर दिये जाते थे और इन पर तांबे २ कर सकोरा तार लपेट दिये जाते थे। बस यह लकड़ी की नलियाँ तोपों का काम देती थीं।

जहाँ ऐसी देशभक्ति हो कि लोग हाथ मे झण्डियाँ लेकर सेनाओं का सामना करें वहाँ विजयप्राप्ति में क्या सन्देह हो सकता है? चीन सर्कार की महती सैनिक शक्ति इन वीरों के हृदयों को दीप्तिमान् करने वाली दैवी शक्ति के सामने तुच्छ थी। सच्चा बल हृदय में रहता है, हाथ मे नहीं, विजय सच्चे आदर्शों की होती है, तोपों की नहीं जैसा कि एक कवि ने कहा है —

हस्ती स्थूल तनु स चाकुशवश , किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो।
वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरय , किं शैलमात्र पवि ॥
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति तम , किं दीपमात्र तम।
तेजो यस्य विराजते स बलवान्स्थूलेषु क प्रत्यय ॥

[यद्यपि अकुश हाथी से छोटा होता है पर बड़ा हाथी उसके वश में रहता है, यद्यपि वज्र पहाड़ से छोटा होता है पर वज्र की चोट खाकर पहाड़ गिर जाता है, यद्यपि दीपक का परिमाण अन्धेरे से छोटा होता है पर अन्धेरा दीपक के जलते ही नाश हो जाता है, बड़े होने से क्या होता है, जिसमें तेज है वही बलवान् है]

जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं वाइसराय ने पहिले तो झूठी रिपोर्ट पेकिंग भेज दी पर सच को कोई कब तक छिपा सकता है। शीघ्र ही समाचार पेकिंग पहुँचा। सर्कार ने तुरन्त ही मञ्चू सेनापति तुआनफ़ग को, जो उस समय ४,००० सिपाहियों के साथ ईचंग में थे, चगतू जाने की आज्ञा दी। यह बिचारे थोड़ी ही दूर जा पाये थे कि वूचग में बलवा हो गया (इसका वृत्तान्त आगे आएगा) अब यह दो विपत्तियों के बीच पड़–एक ओर तो वूचग, दूसरी ओर चगतू। चुग किआग जाकर इन्होंने पड़ाव किया। वहाँ के प्रधान २ नागरिकों ने, जो वस्तुत सभी विद्रोही पक्ष के थे, इनको समझाया कि आपकी सेना के यहाँ रहने से नगर में अशान्ति बढेगी। यह उनकी बात मान गये। बस इनका वहाँ से कूच करना था कि चुगकिआग में भी बलवा कर दिया गया।

अब यह सेनापति बड़े घबराये, जिधर देखिये उधर ही विद्रोह था। अन्त में इन्होंने यह निश्चित किया कि इस समय लड़ने की अपेक्षा पेकिंग जाना श्रेष्ठतर है, पर पेकिंग जायँ किधर से २ मार्ग में कई विद्रोही नगर पड़ते थे, जिनके निकट जानेसे लड़ना ही पड़ता। अत इन्होंने एक बहुत टेढा रास्ता सोचा जो बहुत घूम फिर कर पेकिंग पहुँचता था। पर अब इनके सिपाही, जिनमें अधिकाश चीनी थे, अड़ गये। उन्होंने आगे

बढ़ना अस्वीकार कर दिया। तब तुग ने भेष बदल कर भाग जाने का प्रयत्न किया पर पहिचान लिये गये। १२ सिपाहियों ने उनका पीछा किया उनसे कहा गया कि शस्त्र रख कर क्षमा मांगो पर वह वीर पुरुष थे अकेले होने पर भी उन्होंने उन बारहोंका सामना किया और लड़ कर मारे गये।

यह घटना २७ नवम्बर की है उसी दिन स्जेचुआन प्रान्त की राजधानी चगतू में प्रजातन्त्र की स्थापना की घोषणा की गयी।

बात यह हुई कि वाइसराय साहब समझते थे कि धाँधली से काम चल जायगा पर जब उन्होंने देखा कि अब प्रजापक्ष का बल बहुत बढ़ गयी है तो नेताओं से परामर्श करके अपना पद त्याग दिया। नेताओं ने भी उनके साथ कोई कुव्यवहार नहीं किया। उनको आदर के साथ रक्खा और अधिकारों के छिन जाने पर भी उन से बराबर परामर्श लेते रहे। पर उन्होंने विश्वासघात किया। नगर में आग लगा कर भाग जाने के अपराध पर पकड़े गये और दोष के प्रमाणित होने पर उनको फाँसी दी गयी।

जब चीन सर्कार को इन सब घटनाओं की सूचना मिली तो वह बहुत घबराई। ऐसे अवसर पर कोई कर्म्मचारी ही दोषी ठहराया जाता है। चीन सर्कार ने रेलतार आदि विभाग के मन्त्री, शेंग हुआन हुआइ को दोषी ठहरा कर निकाल दिया। इतना ही नहीं, यदि, अंग्रेज और अमरिकन राजदूत बीच में न पड़ते तो बिचारा हुआइ अपनी कृतघ्न सर्कार की आज्ञा से मार ही डाला जाता।

अष्टम अध्याय ।

विद्रोहियों का सगठन ।

स्जेचुआन के पीछे हैंकाउ में बलवा हुआ। जब तक विद्रोह की आग स्जेचुआन तक परिमित थी तब तक लोग यह समझते थे कि यह सब प्रान्तीय आन्दोलन है जो धीरे धीरे आप ही शान्त हो जायगा। पर हकाउ के पीछे यह आशा जाती रही। हैंकाउ ने आन्दोलन के सर्व रूप और उसकी व्यापकताको निर्विवाद कर दिया। इस पिछले बलवे मे एक विशेषता थी। स्जेचुआन मे रेलवे क सम्बन्ध मे कुछ दिन से वाद विवाद चला आ रहा था इससे वहा झगडे की आशका की जा सकती थी। हैंकाउ (या हूपे प्रान्त मे जिसकी वह राजधानी है) में किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आन्दोलन नहीं था। इस अवस्था को देख कर अगरेजी राजदूत सर रावर्ट हार्ट ऐसे अनुभवी मनुष्य कहते थे कि चीन को जाग्रत होने के लिये कम से कम सौ वर्ष चाहिये।

यकायक यह सब कल्पनाए हवा हो गई। ६ अक्तबर को हकाउ नगर के उस भाग में के एक घर में जिस में कि रूसी रहते थे, बारूद में आग लगने का सा शब्द हुआ। पुलिस ने जो जॉच की तो देखा कि वह घर क्या था बम बनाने का कारखाना था। बहुत से कागज भी पाये गये परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोग पकडे गये और इन में से कइयों को फॉसी दी गयी। वाइसराय जुईचग फूल उठे उनके पास उस समय दो सेनापति थे। चग पियाओ के नीचे १३,३६८ और लियुआनहुग के नीचे ५१३२४ सैनिक थे।

जिन लोगों को फांसी दी गयी थी उन में कुछ सिपाही भी थे। इस का परिणाम यह हुआ कि सिपाहियों ने बलवा कर दिया। वाइसराय तो भाग गये और सेनापति लियुआन-हुंग स्वयं प्रजापक्ष से मिल गये। ४८ घण्टा के भीतर २ इन लोगों ने वूचंग ले लिया और कुछ ही पीछे हेंकाउ भी इनके हाथ में आ गया। सर्कारी सेना हार कर भाग गयी। बहुत से सैनिक जनरल हुंग से आ मिले, कहा जाता है कि उस दिन हेंकाउ में आबालवृद्ध जितने मञ्चू मिले सब मार डाले गये, वाइसराय का महल जला दिया गया।

हेंकाउ में एक सर्कारी शस्त्रागार था। कुछ लोगों ने वहाँ जाकर यह कहा कि हम लोग सर्कार के पक्ष के हैं और विद्रोहियों द्वारा सताये हुए हैं। हमको शरण दी जाय। शस्त्रागार के अफसर ने इनको भीतर ले लिया। वहाँ पहुँचते ही इन्होंने अपने अधिकार जमा लिये। शस्त्रागार में इनको बहुत से शस्त्र और शस्त्र ढालने के यंत्र हाथ लगे।

इन बातों ने पेकिंग को घबरा दिया। नित्य नयी नयी घोषणाएं निकलने लगीं। कभी किसी वाइसराय, कभी किसी सेनापति का दोषी ठहराया जाता पर इन बातोंसे क्या होना था। इस अवसर पर सर्कार को युआनशिहकाइ की स्मृति आयी। युआन बुलाये गये पर वह आने पर सम्मत न हुए। उनको निकालते समय उनके पाँव में रोग बतलाया गया था। उन्होंने लिख भेजा कि जिस पीड़ा के कारण मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी थी वह अभी अच्छी नहीं हुई। गवर्नमेण्टने लिखा कि अपना पाँव तत्काल अच्छा करके अभी पेकिंग चले आवो। उन्होंने लिख भेजा कि मैं क्या करूं, मेरा पाँव अच्छा ही नहीं होता। साथ ही उन्होंने कुछ शर्त भी लिख भेजा जिनके स्वीकृत होने पर उनके स्वस्थ होनेकी सम्भावना थी। गवर्नमेण्ट बड़ी आपत्ति में पड़ी। इसी घबराहट के समय एकाएक कई बैंकों का दिवाला धड़ाधड़ निकल गया जिससे और अशान्ति फैली।

उधर विद्रोहियोंका बल बढ़ता ही जाता था। जनरल लि युआन हुंग

के पास २८,००० सुशिक्षित और सु-सज्जित सैनिक थे। नये रंगरूट नित्य भरती होते जाते थे। सर्कारी सिपाहियों की वर्दी खाकी थी। इन लोगों ने काली वर्दी धारण की। इनकी कलिङयों पर यह शब्द लिखे रहते थे—'हिसन ट्ा, मे ट्ह मन।' इनका अर्थ है 'नवीन हन राजवश' मञ्चुओं को मारो।' [यह हम पुस्तक के आरम्भ में ही लिख आये हैं कि चीनी अपने को हन (या हान) का सन्तान कहते हैं] उस समय चीन में एक गान का बड़ा प्रचार हो गया था। उसमें 'स्वतत्रता' का आह्वान किया गया है। उसके कुछ अशोंका अनुवाद नीचे दिया जाता है —

स्वतत्रते, स्वर्ग का श्रेष्ठतम दिव्य वस्तु
शान्तिके साथ मिल कर तुम इस पृथ्वी पर करोगी
सहस्रों विचित्र नये काम।
आकाश तक पहुँच कर
बादलों का रथ और वायु का घोड़ा बनाकर
आओ, आओ, पृथ्वी पर राज करने के लिये।
हमारे दासत्व के अँधेरे नरक के नाम पर
आओ, हमको अपने प्रकाश के एक किरण से प्रकाशित करो।
दिन को अपने विचारों में, रात को अपने स्वप्नों में
मैं अपनी पितृभूमि के दुःखो को देखता हूँ,
परन्तु स्वतत्रता का चलन्त स्वभाव
मुझे उसका प्राप्तिसे रोकता है।
हा शोक मेरे भाई सभी मर गए हैं।
हा शोक स्वतत्रता मर गयी,
सर्वश्रेष्ठ एशिया कुछ नहीं है
सिवाय एक विस्तृत मरुभूमि के।
इसी अवसर पर विद्रोही नेताओं ने निम्न घोषणा निकाली

"All the Han brothers should know that the rising by the revolutionists is for the salvation of the people and the punishment of the guilty. The Manchu government has been tyrannical, cruel, insane, unconscious, inflicting heavy taxation and stripping the people of their marrow. It will not give relief to the starving all over the plains. It is exhausting the blood of the people in order to build and ornament palaces and parks.

Therefore all our brethren should understand their duties and help the revolutionary army in the extirpation of such barbarous aliens. The Heaven-bestowed duty of every citizen with its responsibilities is unshirkable and that is, without the least doubt, to sweep away and extinguish what injures the people. To-day's opportunity is bestowed on us by the great Heaven, if we do not seize and make use of it, until what time shall we wait then?"

'सब हन भाइयों (अर्थात् चीनियों) को जानना चाहिये कि राजभक्तियों का उठना (या विद्रोह) जनता के उद्धार और अपराधियों को दण्ड देने के लिये हुआ है। मञ्चू शासन प्रजा पीड़क, क्रूर, पागल और बुद्धिहीन रहा है। उसने लोगों पर कड़े कड़े टैक्स लगाये हैं और लोगों का सार निचोड़ लिया है। जो लोग सारे देश में भूखे मर रहे हैं उनको सहायता नहीं दी जाती। महलों और उद्यानों के बनाने और सजाने में लोगों की सत्ता नष्ट की जा रही है।



इस लिये हमारे सब भाइयोंको चाहिये कि अपने कर्तव्योंको समझ और राजक्रान्ति सेनाको ऐसे असभ्य विदेशियों का नाश करने में सहायता दें । प्रत्येक मनुष्य का ईश्वर-निदिष्ट कर्तव्य और दायित्व अमिट है। वह कर्तव्य यह है कि जो वस्तु जनता को हानि पहुचा रही है उसे दूर बहा दिया जाय और मिट्टी में मिला दिया जाय। आज का अवसर हम को ईश्वर ने दिया है, यदि हम ने इसका सदुपयोग न किया तो फिर कब तक बैठे प्रतीक्षा करते रहेंगे ?"

इस प्रकार के उत्तेजक वाक्यों से प्रजा का उत्साह बढता जाता था। विद्रोहियों का संगठन दिन दिन सुदृढ होता जाता था। उनके सैनिकों की संख्या प्रतिदिन बढती जाती थी। अब उनके पास काम चलाने के योग्य शस्त्र भी हो गये थे और बनते चले जा रहे थे। इतनी बड़ी सेना के खाने पहिनने के लिये धन की आवश्यकता थी। उसका भी प्रबन्ध होता जाता था। जो नगर इन के वश में आते जाते थे उन के सर्कारी कोषों और टैक्सों से कुछ द्रव्य तो मिलता ही था। हेंड्काउ की टकसाल से २० लाख तेल मिले थे। प्रजा आप सहर्ष चन्दे देती थी। इसके अतिरिक्त जो चीनी विदेशों म बसे हुऐ थे वह बराबर द्रव्य भेजते थे। अत देखते ही देखते इनका संगठन इतना सुदृढ हो गया कि चीन सर्कार इनको सुगमता से दमन नहीं कर सकती थी। दूसरी शक्ति इन के पास नैतिक थी। विद्रोही दल के सेनापति से लेकर सिपाही तक सभी उत्साह मे भरे थे और प्रजा की उन के साथ सहानुभूति थी। सर्कारी सेनाओं में किसी को ऐसा उत्साह नहीं था। अनीति के लिये स्थायी उत्साह होना कठिन है। प्रजा भी या ता सर्कार की विरोधी थी या कम से कम उदासीन थी।

चीन सर्कार के अतिरिक्त इन लोगों को एक और सम्भवराष्ट्र की ओर ध्यान रखना पड़ता था। यदि इस झगड़े लड़ाई में दो चार यूरोपियन या दस बीस ईसाई मारे जाते, इन लोगोंके घर मकान लूट जाते

या इनको अन्य किसी प्रकार की क्षति पहुँचती तो यूरोपियन राष्ट्र झट बीच में कूद पड़ते और चीनकी अस्थिर दशा से कुलाभ उठाना चाहते। यह बात इन विद्रोहियों को कदापि अभीष्ट न थी, इस लिये इन्होंने इसका बड़ा कड़ा प्रबन्ध किया कि चाहे जो कुछ हो जाय किसी यूरोपियन, अमेरिकन या जापानी को किसी प्रकार की शारीरिक या आर्थिक हानि न पहुँचने पावे।

नवम अध्याय

विप्लवकी वृद्धि

जो उत्साह जनता विद्रोहपक्ष में दिखला रही थी और जो प्रबन्ध विद्रोही कर रहे थे उनसे स्पष्ट था कि इस आन्दोलन का शीघ्र दबना कठिन ही नहीं असम्भव था। उत्साहके नित्य नये उदाहरण मिलते थे। अगस्त में विद्रोह आरम्भ हुआ, अक्टूबर बीतने के पहिले अकेले दक्षिण अमेरिका प्रवासी चीनियों ने १० लाख पौंड अर्थात् डेढ़ करोड़ रुपया भेजा। मामूली नौकरी करने वालों ने यथाशक्य द्रव्य दान किया। अँग्रेजी काउन्सिल के नौकर ने अपना दो मास का वेतन दे दिया। यदि जनरल ली या अन्य विद्रोही जनरल रुपये शस्त्र आदिका प्रबन्ध कर सकते तो उनको लाखों रगरूट मिलते। पर अब वह थोड़े ही सिपाही भरती करते थे। बात यह थी अब उनको समृद्ध सर्कारी सेनाओं का सामना करना था। इस काम के लिये अच्छी भाँति सुशिक्षित और सुसज्जित सिपाहियों की आवश्यकता थी, अधकचरे रगरूटों की भीड़ की नहीं। दूसरे, इनका यह भी प्रयत्न था कि लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो। इनके पास सर्कारके बराबर द्रव्य तो था ही नहीं, फिर न जाने क्या राजनैतिक अड़चनें उत्पन्न हो जायँ, चीन सर्कार किसी विदेशी राष्ट्र से सहायता माग ले या कोई विदेशी राष्ट्र आप ही किसी बहाने बीच में कूद पड़े या देश में ही अदम्य अराजकता, लूटमार, डकैती आदि फैल जाय। इस लिये जितनी जल्दी लड़ाई समाप्त हो उतना ही अच्छा था। इस काम के लिये भी छोटी छोटी परन्तु सुसंगठित सेनाओं की आवश्यकता थी, भारी भीड़ों की नहीं।

हम पहले लिख आये हैं कि इनको विदेशियों की ओर से खटका लगा रहता था। जब किसी देश में इस प्रकारकी राजक्रान्ति होती है तो क्रान्तिकर नेताओं (या विद्रोहियों) को विदेशियों के विषय में कई प्रकार के प्रबन्ध करने पड़ते हैं। प्रथम नियम यही है कि कोई देश दूसरे देशों के भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करता। इस लिये जब तक राजक्रान्ति होती रहती है कोई नहीं बोलता। देशवासियों को अधिकार है कि अपने यहां जैसा शासन चाहें रक्खें उनकी इच्छा हो तो प्रजातन्त्र करलें, नहीं किसी राजा के अधीन रहें। परन्तु विदेशी राष्ट्रों की दृष्टि सदैव क्रान्तिकरों पर लगी रहती है। उनको यह चिन्ता रहती है कि यह नया शासन न जाने कैसा होगा। पुराने शासन ने जो सन्धियां की हैं उनका पालन होगा या नहीं, पुराने शासन ने जो ऋण लिया है वह चुकाया जायगा या नहीं। यदि नया शासन कह दे कि हम पुराने शासन की सन्धियां या ऋणों को नहीं मानते तो परराष्ट्रों को बीच में पड़ने का अवसर मिलता है। अभी रूस में ऐसा हुआ है। नये बोलशेविक शासन ने कह दिया है कि हम पुरानी रूसी गवर्नमेण्ट की सन्धियों से बद्ध नहीं हैं न हम उनके ऋणों को चुकावेंगे। इस से इंगलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, सभी घबरा गये हैं क्योंकि उनका करोड़ों रुपया डूबना चाहता है।

अस्तु, जो नया शासन ऐसा, अन्धेर नहीं करना चाहता वह स्पष्ट तया घोषित कर देता है कि पुरानी सन्धियोंका पालन होगा और परराष्ट्रों के साथ वैसा ही व्यवहार होगा जैसा कि पुराना शासन करता था। फिर परराष्ट्रों को बीच में पड़ने का कोई अवकाश नहीं रह जाता। इस घोषणा के पीछे नया शासन प्रधान २ परराष्ट्रों से 'अंगीकृति' (recognition) की प्रार्थना करता है, अर्थात् उनसे यह प्रार्थना करता है कि वह इस बात को अङ्गीकार कर लें कि अब उस देश विशेष में पुराने शासन के स्थान में यह नया शासन स्थापित हो गया है और इसके वही सब अधिकार हैं जो पुराने शासन को थे।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए जनरल ली युआन-हुँग ने १२ अक्तूबर को एक विज्ञप्ति निकाली। इस में उन्होंने अपने को 'चीन के प्रजातन्त्र के सैनिक शासन की हूपे की सेना का प्रधान सेनापति' (Commander-in-chief of the army of Hupeh of the military government of the Republic of China) लिखा। (हूपे उस प्रान्त का नाम है जिस में हेकाउ आदि नगर हैं)। इस विज्ञप्ति में पहिले भूमिका रूप में यह लिखा गया कि अभी तक चीनी प्रजातन्त्रपक्ष के पास कोई ऐसा प्रदेश नहीं था जिस पर उसका पूरा राज हो इस लिये विदेशी राष्ट्र उसको अंगीकार नहीं कर सकते थे पर अब सारा स्जेचुआन प्रान्त उसके अधिकार में हो गया है अतः विदेशी राष्ट्रों को चाहिये कि उसको अंगीकार कर लें। इस के पीछे नये शासन की विदेशियों के प्रति जो भावी नीति थी उस का सात धाराओं में इस प्रकार उल्लेख किया गया —

(i) All treaties contracted by foreign powers with the Imperial Government will continue to be observed

(ii) All property of the subjects of foreign powers situated within the territory occupied by the militrary government will be recognised and protected

(iii) All privileges already granted to foreign powers will also be recognised and protected

(iv) All payments due from the various provinces on account of indemnities or loans will be made in full at the proper dates as hitherto

(v) All munitions of war supplied by any

oreign power for the assistance of the Imperial overnment will be confiscated,

(vi) Any foreign power assisting the Impe-ial government to resist the military govern nent will be regarded as an enemy

(vii) No treaties whatsoever made subsequ-nt to the date of this notification between foreign owers and the Imperial government will be re-ognised by the Military government

भावार्थ

(१) परराष्ट्रों ने साम्राज्य सर्कार के साथ जो सन्धियाँ की हैं उन ब का पालन होगा।

(२) सैनिक शासन के अधिकार में जो प्रदेश होंगे उनमें विदेशी ष्ट्रों की प्रजाओं की जो कुछ सम्पत्ति होगी उसकी रक्षा की जायगी।

(३) भिन्न २ प्रान्तों से युद्धदण्ड या ऋण आदि का जो कुछ द्रव्य राष्ट्रों को मिलना चाहिये वह नियमित तिथियों पर पूर्ववत् पूरा श दिया जायगा।

(४) यदि कोई परराष्ट्र साम्राज्य सर्कार की सहायता के लिये किसी ार की युद्धसामग्री देगा तो वह जब्त कर ली जायगी।

(५) यदि कोई परराष्ट्र साम्राज्य सर्कार को सैनिक सर्कार का विरोध ने में सहायता देगा तो वह शत्रु समझा जायगा।

(६) परराष्ट्रों को जो कुछ अधिकार मिल चुके हैं वह सुरक्षित रहेंगे

(७) यदि इस विज्ञप्ति की तिथि के पीछे साम्राज्य सर्कार और किसी राष्ट्र में कोई सन्धि हुई तो सैनिक सर्कार उसे न मानेगी।

[वक्तव्य—ऊपर 'सम्राट् की सर्कार' के लिये 'साम्राज्य सर्कार' आया है। विद्रोही शासन अपने को 'सैनिक शासन' या 'सैनिक



सर्कार' कहता था इसका कारण यह था कि यद्यपि चीनमे प्रजातन्त्र का घोषणा कर दी गयी थी पर इस प्रजातन्त्र का अभी तक एक ही अंग, अर्थात् सेना सगठित हो पाया था। सेना ही प्रजातन्त्र के नाम से शासन कर रही थी। अत इस शासन को सैनिक शासन कहना उचित ही था।]

इस विज्ञप्ति ने सैनिक शासन की नीति को इतने स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित कर दिया और यह नीति स्वयं इतनी न्याय्य थी कि अब किसी विदेशी राष्ट्र को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं रहा।

विदेशियों से छुट्टी पाकर जनरल ली और उनके साथियों को घरेलू अराजकता को रोकना पड़ा। सभी देशों में इस प्रकार के गुण्डे बदमाश होते हैं जो इस प्रकार के विप्लव की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इन लोगों की बन आई लोगों को, विशेषतः मञ्चुओं को, लूटने मारने का अच्छा अवसर हाथ लगा। मञ्चुओं का तो बनैले पशुओं की भाँति शिकार होता था पर विप्लविक नेताओं ने यथासम्भव इस को भी रोका। बड़ी कड़ाई से न्याय होता था। जो कोई अत्याचार करता पकड़ा जाता उसका सिर काट लिया जाता।

इधर चीन सरकार बड़ी कठिनाई में थी स्जेचुआन और हूपे दो दो प्रान्तों में एक साथ ही विप्लव होने से सेना आदि का उपयुक्त प्रबन्ध करना कठिन हो रहा था। सर्कारी प्रधान सेनाध्यक्ष जनरल यिन चांग हैंको से ६६ कोस दूर थे, पर जनरल चांग पियाओ ने ३० अक्टूबर को विद्रोहियों का सामना किया। एडमिरल साह भी अपनी जहाज़ों के साथ उनकी सहायता के लिये तत्पर थे फिर भी सर्कारी सिपाहियों की हार ही हुई।

जीत के समय ही मनुष्य की उदारता की परीक्षा होती है। हमारे विद्रोही इस परीक्षा में पूर्णतया उत्तीर्ण हुए। उन्होंने आहत शत्रुओं के साथ बहुत ही अच्छा बर्ताव किया और कैदियों के साथ भी किसी प्रकार की क्रूरता न होने दी। बहुत कुछ हर्ष भी नहीं मनाया गया। केवल विदे-

शी धागान्धिलों के पास औपचारिक सूचनाएं भेज दी गयीं। इसके पीछे ही हूपे में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी गयी।

इन सूचनाओं और पत्रों को पाकर विदेशी कान्सल बड़े द्विविध में पड़ते थे। यह पत्र चीनी प्रजातन्त्र' या 'सैनिक शासन' की ओर से भेजे जाते थे पर अभी तक किसी विदेशी राष्ट्र ने इस शासन को स्वीकृत नहीं किया था। यदि उत्तर न दिया जाय तो अपमान होता था और उनका बल इतना बढ़ गया था कि अपमान करना ठीक न होता। यदि उत्तर दिया जाय तो किस के नाम, क्योंकि बिना अपनी सरकारों की आज्ञा के कान्सल लोग इस नये शासन को स्वीकृत कर नहीं सकते थे। अतः सोच विचार कर उत्तर तो दिये जाते थे पर गोल शब्दों में और प्रजातन्त्र के नाम नहीं वरन् आये हुये पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के नाम।

जब वैपविकों के बुहन (बूचंग, हन्यंग, हंकाउ) में विजय प्राप्त करनेका समाचार देश में फैला तो विद्रोह की आग चारों ओर फूट पड़ी। शीघ्र ही सर्कार की नयी सेना, लू-चुन, जो बड़े व्यय और परिश्रम से सम्बद्ध की गयी थी, बिगड़ गयी और उसके बहुत से सिपाही विद्रोही दल में आ मिले।

२१ अक्तूबर को इचांग और इसके दो एक ही दिन के भीतर कुइ किआंग और चांगशा विद्रोही शासन में चले गये। चांगशा के सूबेदार ने कुछ विरोध करने का प्रयत्न किया पर उसे अपने प्राणों से ही हाथ धोना पड़ा। इस नगर में विद्रोही सेना को ७०,००० नये सिपाही मिले।

२५ अक्तूबर को क्वांगतुंग प्रान्त के सूबेदार साहब ने अपनी राजधानी कैण्टन में एक जलूस निकाला और बड़े तपाक के साथ नगर में होकर निकले, रास्ते में किसी ने बम फेंक कर उनकी सूबेदारी की समाप्ति कर दी, इसके कुछ ही पीछे कैण्टन छोड़ कर सारा प्रान्त प्रजातन्त्र के अन्तर्गत हो गया।

इसी के लगभग तैयुआन की सर्कारी सेना जो विद्रोहियों के विरुद्ध भेजी जाने वाली थी उन से जा मिली, यह नगर शासी प्रान्त में है।

पेकिंग से कुछ दूर पर लाञ्चउ एक स्थान है। वहाँ एक सर्कारी सेना थी। उसे हृये जानेकी आज्ञा दी गयी। सिपाहियों ने उस समय तक जाना अस्वीकार किया जब तक कि उनकी शर्तें न मान ली जायँ वह शर्तें यह था—

(१) जातीय सभा ने नियमित शासन और दायित्व-पूर्ण कौंसिल (अर्थात् मन्त्रिमण्डल) के विषय में जो प्रस्ताव किये हैं वह मान लिये जायँ।

(२) जिन लोगों ने सर्कार के विरुद्ध कोई राजनैतिक अपराध किये हों वह सब क्षमा किये जायँ।

सर्कार ने हार मान कर इन दोनों शर्तों को गोल शब्दों में स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार देखते ही देखते तीन ही महीनों के भीतर यह विद्रोह इतनी दूर फैल गया। इसकी अप्रतीक्षित वृद्धि ने न केवल चीन सर्कार और विदेशियों को दंग कर दिया प्रत्युत स्वयं इस आन्दोलन के नेताओं को भी यह आशा न थी कि उनका प्रभाव इतना शीघ्र इतना विस्तार पकड़ेगा।

दशम अध्याय

सरकार की अस्थायी जीत

कोई आन्दोलन हो, एक दम नहीं सफल होता। चाहे आन्दोलन किसी अन्यायी राजा के विरुद्ध हो, चाहे किसी नौकरशाही के विरुद्ध हो, चाहे किसी आततायी विदेशी शासन के विरुद्ध हो, पहिले २ उसके मार्ग में अनेक कण्टक पड़ते हैं राजनैतिक ही नहीं, सामाजिक, साम्प्रदायिक, सभी आन्दोलनों की यही गति है। एक ओर बड़ी संख्या, धन, अधिकार और संगठन होता है, दूसरी ओर कोरा उत्साह होता है। अधिकारिवर्ग में नैतिक बल की न्यूनता होती है पर भौतिक बल का आधिक्य होता है, वैप्लविक पक्ष में नैतिक बल का आधिक्य होता है पर भौतिक बल की न्यूनता होती है। ऐसी दशा में आरम्भ में अधिकारिवर्ग की जीत स्वाभाविक है। सभी काम संसारी ढंग से ही होते हैं। राम कृष्ण आदि अवतारी पुरुषों ने भी पृथ्वी पर प्राय पार्थिव शस्त्रों से ही काम लिया था। जब तक वैप्लविक दल भौतिक सामग्री उपार्जित करता है तब तक अधिकारी दल अपनी संगृहीत सामग्री का उपयोग करता है, इसी लिये नीति-परक होते हुए भी वैप्लविक दल की क्षति होती है। अमेरिका, इटली, यूनान, पोलैण्ड आदि के इतिहास यही दिखलाते हैं कि जो न्याय और नीति पथ पर होते हैं उनको भी एक नहीं अनेक बार दबना पड़ता है। पर यह भी निर्विवाद है कि अन्तमें जीत धर्म्म की ही होती है। भौतिक सामग्री क्षीण होती जाती है, नैतिक सम्पत्ति अमर है। इसी से अधिकारिवर्ग का बल घटता जाता है पर वैप्लविक दल, यदि वह सचमुच नीतिपथ पर हो, प्रबल होता जाता है।

देश हितैषियों के मार्ग में जो बाधाएँ पड़ती हैं वह अत्यन्त आव है। जो वस्तु सुगमता से मिलती है वह सुगमता से खो दी जाती है जो स्वातन्त्र्य बड़े २ कष्टों को सहकर प्राप्त किया जाता है उस की रक्षा वैसी ही की जाती है। साथ ही इसके, कष्ट ही सच्चे झूठे की कसौटी विपत्ति के समय ही इस बातकी पहिचान होती है कि कौन मनुष्य का सच्चा प्रेमी है और कौन झूठा 'देश' बकना एक फैशन सा हो ग है। जैसा कि 'अकबर' (उर्दू के प्रसिद्ध वर्तमान कवि) ने कहा है—

कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ

इस प्रकार के नेता, देश के मौखिक सेवक, सर्वत्र होते हैं, प विपत्ति ही इनकी सच्ची परीक्षा है। तीसरा लाभ यह है कि लोग धैर्य सीखते हैं। संसार में कहीं सदा सुख ही सुख नहीं मिलता। कार्यक्षेत्र में नये पाँव रखने वालों को इस बात की शिक्षा भी मिलनी चाहिये।

आपत्ति से एक और लाभ होता है। सिद्धान्ता की परीक्षा हो जाता है। वृक्ष फल से जाना जाता है। धर्म की परीक्षा उसके अनुयाइयों को देख कर होती है जिस सिद्धान्त के उपासक कष्टों में पड़कर भी अपने धैर्य्य को नहीं छोड़ते उसकी उत्तमता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। जो लोग स्वतन्त्र विचार नहीं कर सकते, जिनमें इतनी योग्यता नहीं है कि सिद्धान्तों की तुलना कर सकें, वह भी उनके अनुयाइयों की दृढ़ता आदि देख कर उनका आपेक्षिक श्रेष्ठता का निर्णय कर सकते हैं। योरप में ल्यूथर के सिद्धान्तों को समझने की क्षमता नहीं रखते थे वह प्राटेस्टेण्टोंकी असामान्य दृढ़ता पर मुग्ध हो गये, भारत में सिक्खों असाधारण धैर्य्य और सहिष्णुता ने न जाने कितने लोगों को गुरु का भक्त बना दिया।

अतः राजनैतिक विपत्तियों से घबराना अच्छा नहीं है। विपत्तियों से उत्तेजित होना ही वीर पुरुषों और सत्यसन्ध मनुष्यों का लक्षण है।

कदर्थितस्यापि ही धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुण प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधो शिखा यान्ति कदाचिदेव॥
अर्थं सुख्य कीर्तिरपीह मामूदनर्थ एवास्तु तथापि धीरा।
निजप्रतिज्ञामनुरूध्यमाना महोद्यमा कर्म समारभन्ते॥

अभी तक सैनिक सर्कार को कोई भारी क्षति नहा सहनी पड़ी थी। जो लड़ाइयाँ हुई उनमें उसकी जीत हुई, जिन जिन नगरों को उसने लेना चाहा सहज में ही उसके हाथ लग गये। पर अभी मञ्चू शासन मरा नहा था। बात यह थी कि कई कारणों से वह अपना पूरा बल लगा नहीं सका था पर बुझने के पहिले दीपक एक बार बड़े जोर से चमक उठता है। मञ्चू शासन ने भी इसी प्रकार एक बार अच्छा जोर दिखलाया।

२४ अक्तूबर को दोनों सेनाओं की मुठभेर हुई और परिणाम विद्रोहियों के लिये बुरा ही रहा। उनको कुछ पीछे हटना पड़ा। २० अक्तूबर को फिर लड़ाई हुई। विद्रोही दल में ८००० सैनिक थे। सर्कारी सिपाहियों की संख्या १०,००० थी। इन की कुमक पर जहाज भी थे। यह पहिली ही खुली लड़ाई थी। एक बड़े मैदान में युद्ध हुआ। विद्रोही सेना बड़ी वीरता से लड़ी पर हार गयी। ६०० मनुष्य मारे गये और १५०० घायल हुए। बहुत सी तोपें और सकड़ों कैदी सर्कारी सेना के हाथ लगे। घायलों के लिये और तो कोई प्रबन्ध था नहीं, पास के यूरोपियन अस्पतालों ने उनकी मरहम पट्टी का प्रबन्ध किया।

इस के पीछे एक भीषण घटना हुई। सरकारी सेना हैंकाउ लेने के लिये उस पर गोले बरसा रही थी। उस के पास जर्मनी के प्रसिद्ध क्रप कारखाने की बनी तोपें थी। उधर विद्रोही सिपाही वूचांग और हनियांग से इन तोपों का उत्तर दे रहे थे। पहिले तो सरकारी तोपों ने शत्रु की तोपों को चुप कर देना चाहा पर जब ऐसा न हो सका तो ... यिनचांग ने हैंकाउ को आग लगा देने का निश्चय किया। नियमों के विरुद्ध था। कम से कम

को सूचना दे दी जाती है कि वह एक नियत समय के भीतर नगर छोड़ कर चले जाय पर जनरल यिन ने यह सब कुछ न करके आग लगा ही दी। तीन दिन तक आग जलती ही रहा सहस्रों निर्दोष मनुष्य जल मरे, जो बचे उनको कहीं भागने का ठिकाना नहीं था। दो ओर दो सेनाएं, बीच में भस्मीभूत नगर विचारे क्या जाय। इसपर भी सरकारी सैनिकों ने मन, मानी लूट और हत्या की। जो सिपाही लड़ाई में पकड़े गये थे वह बुरी तरह मारे गये, यद्यपि युद्ध के कैदियों को मारना नियम विरुद्ध है। और तो और सरकारी रेड क्रास * वालों ने घायल विद्रोहियों को मार डाला।

परन्तु इस से विद्रोही हताश नहीं हुए उलटे उनका उत्साह और बढ़ता गया। उधर जनता की सहानुभूति तो इनके साथ थी ही इस हैंकाउवाली घटना ने इस की मात्रा और बढ़ा दी। जिस शासन के सेनापति एक नगर को बिना किसी प्रकार की सूचना दिये इस निर्दयता से जला सकते हों, जिस के सिपाही इस प्रकार के पक्के लुटेरे और हत्यारे हों, जिसके डाक्टर घायलों को मार डालते हों, जो युद्ध के नियमों का इस प्रकार खुला निरादर देखते हों, उस के प्रति लोगों को घृणा, क्रोध, द्वेष, होना स्वाभाविक ही था। पर सर्कार अपने कृत्य से बहुत प्रसन्न थी। जनरल यिन से भी बड़े एक जनरल फेंग क्युओ-चाग सेनापति बना कर भेजे गये। विजयप्राप्ति और उस से भी बढ़ कर लूट प्राप्ति, से सर्कारी सिपाहियों का उत्साह भी बढ़ गया था। देखते ही देखते लगभग ७०,००० सिपाही एकत्र हो गये।

उधर विद्रोहियों की सेना में भी हुआग हिसन नामक एक नये जनरल आगये थे। यह बड़े ही योग्य व्यक्ति थे। इनके सुप्रबन्ध से सेना फिर ठीक हो गयी। उसकी संख्या भी लगभग ८०,००० तक पहुँच

---

* युद्ध में जो लोग अस्पतालों में काम करते हैं उनके वस्त्रोंपर लाल रङ्ग का क्रास का चिन्ह होता है। उन पर शत्रु भी गोली नहीं चलाता पर उनका कर्तव्य है कि शत्रु के घायल सिपाहियों के साथ भी अपने सिपाहियों का सा बर्ताव करें।

थी। मैनिकों की संख्या तो मकारा सेना से अधिक थी पर तोप आदि सामग्री उतनी अच्छी न थी। परन्तु इनकी फुर्ती, निर्भयता, दूरदर्शिता आदि सद्गुण इस कमी को पूरा कर देते थे। एक अंग्रेज संवाददाता ने लिखा था "We are getting to regard pluck is part and parcel of the rebel make up" अर्थात "हम लोगों को प्रतीत होने लगा है कि फुर्तीलापन विद्रोहियों की बनावट का एक आवश्यक अंग है।"

सर्कारी सेना भी चुपचाप रही थी। उसके जनरल का अनुमान था कि यदि लोग एक बार पूरी तरह डरा दिये जायें तो विद्रोह पक्ष को आप ही छोड़ देंगे। उन्होंने अपनी ओर से इस काम में कोई कसर न रक्खी। सिपाहियों को पूर्ण स्वातन्त्र्य दे दिया गया कि वह जो चाहें करें। हाङ्काउ के आस पास के प्रदेश में मौनिक राज था। लोगों का मारा जाना, घरों का जलाया जाना, स्त्रियों के सतीत्व का भ्रष्ट किया जाना, यह सब एक सामान्य बात हो गयी। जिन लोगों पर यह सन्देह हो जाता कि इन्होंने किसी विद्रोही को, चाहे वह विद्रोही शरणागत आहत रहा हो किसी प्रकार की सहायता दी है या कुछ देर के लिये शरण दी है वह घरों में बन्द करके जला दिये जाते। सर्कारी सेना का अभिमान इस बात से और भी बढ़ गया था कि इस बीच में इसने हानियांग ले लिया था और ऐसा प्रतीत होता था कि वूचांग भी शीघ्र ही इसके हाथ में आ जायगा। यदि वूचांग भी सर्कार को मिल जाता तो इसका तात्पर्य्य यह होता कि सारा हूपे प्रान्त जो इस समय प्रजातन्त्र का एक प्रधान केन्द्र हो गया था विद्रोहियों के हाथ से निकल गया।

इसी अवसर पर सर्कार के बहुत समझाने बुझाने पर युआन शिहकाइ पेकिंग आये। उन्होंने आते ही झगड़े के शान्त करनेका प्रयत्न किया और अंग्रेजी कान्सल के द्वारा विद्रोहियों से बात चीत करनी आरम्भ की। जब तक कुछ निश्चय न हो जाय तब तक दोनों पक्षों ने युद्ध बन्द करना स्वीकार किया।

एकादश अध्याय ।

शंघाइ और नैंकिङ्ग का पतन ।

इधर हूपे में यह घटनाएँ हो रही थीं उधर नवम्बर के आरम्भ में शंघाइ में आग भड़की, नगर सहज में ही विद्रोहियों के हाथ लग गया। सर्कारी जहाज भी इन से मिल गये। प्रधान जहाजी अफसर सरकार के भक्त थे पर सारे नाविक विप्लविक दल में थे, इसलिये उनकी एक न चली। शंघाई में कूसिंग नामक किला था। उसके अफसर भी राजभक्त थे पर सैनिकों के बिगड़ जाने से उनको भी प्राण बचा कर भागना पड़ा।

अभी तक शंघाई में कोई शिक्षित विद्रोही सेना न थी। केवल सामान्य मनुष्यों ने विद्रोह का झण्डा उठाया था। जो थोड़े बहुत शिक्षित थे उनकी संख्या अत्यल्प थी। शेष के पास पहिले तो कोई हथियार ही न थे। पीछे से जब उनको हथियार मिले भी तो वह यह ही नहीं जानते थे कि उनको चलाना कैसे होता है। इन में से बहुत से अभी लड़के थे इसी दशा में इन लोगों ने शंघाइ के प्रसिद्ध कियागन शस्त्रागार पर आक्रमण किया। यह शस्त्रागार जहाजों या वूसिंग किले की भांति पोच न था। उसके अफसर और सिपाही सभी राजभक्त थे, उन्होंने विद्रोही सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। उनको सुरक्षित स्थान, और उत्तम शस्त्रों और समुचित शिक्षा का सुभीता भी था पर विद्रोहियों के अदम्य साहस और उत्साह के सामने इन गुणों से कुछ काम न निकला शस्त्रागार भी विद्रोहियों का हो कर ही रहा।

इस घटना का वर्णन करते हुए 'नार्थ चाइना डेली न्यूज़' के एक सम्वाददाता ने लिखा था—' Truly the burden of Manchu guilt and the responsibility of Manchu tyrranies are great when such sheep will offer themselves joyfully for the slaughter that must ensue on the first real encounter with disciplined troops It was pathetic at times The attack on the arsenal was led by a man with and old sword with a handle 3 ft long and a blade equally long He was shot down but others equally inexpert and badly armed followed him"

"सचमुच मञ्चुओं ने पाप का बोझ और उनके कुराज का दायित्व बहुत ही भारी होगा जबकि ऐसी भेड़ उस हत्याकाण्ड में हर्ष के साथ बलि बनने के लिये आगे आती हैं जो शिक्षित सिपाहियों के साथ इनकी पहिली ही लड़ाई में अवश्य होगा। कभी २ देख कर दया आती थी। शस्त्रागार पर जो आक्रमण हुआ उसका नेता जो मनुष्य था उसके पास केवल एक पुरानी तलवार थी जिसकी मूठ ३ फीट लंबी थी। उसका फल भी उतना ही लम्बा था। उसे गोली लगी पर उसी की भांति अनुभव शिक्षा और शस्त्रहीन दूसरे मनुष्य आगे बढ़ते गये।"

इन लोगों की देशभक्ति की कहां तक प्रशंसा की जाय। कहां शस्त्रागार की महाकाय अग्निवर्षक तोपें, कहां ६ फुट लम्बी पुरानी तलवार! ऐसे शस्त्र तो आज कल खुले मैदान की लड़ाई में भी काम नहीं आते, वहां तो एक सुदृढ़-निर्मित, सुरक्षित गढ़ प्राय, मकान लेना था पर जैसा कि पहिले कहा जा चुका है 'तेजोयस्य विराजते स बलवान' इन लोगों की तपस्या कब निष्फल जा सकती थी।

पुराणों में यह कथा आती है कि एक रक्तबीज नाम का दुष्ट दैत्य था। उसके रक्त के जितने बिन्दु पृथ्वी पर गिरते थे उतने ही उसके तुल्य रक्तबीज उत्पन्न होते थे। पर अन्त में देवी के हाथ से उसकी मृत्यु हुई और युक्ति ऐसी की गयी कि उसका रक्त क्षीण होता गया और नये रक्त बीज न बने। धर्म्म युद्ध में भी रक्त बीज सी ही कुछ बात होती है। न्याय और धर्म्म के लिये जो लोग मारे जाते हैं उनके पीछे उन्हीं के ऐसे अनेक धर्म्म वीर उत्पन्न होते हैं, शहीदों का रक्त शहीद उत्पन्न करता है, पर रक्त बीज और धर्म्म वीर में एक अन्तर है। रक्तबीज के साथ ऐसी युक्ति की जा सकती थी कि उससे दूसरे रक्त बीज न बने, धर्म्म वीर के साथ ऐसी युक्ति नहीं की जा सकती। जहां धर्म्म बलि का रक्त गिरेगा वहां दूसरा धर्म्म बलि अवश्य उत्पन्न होगा और अन्त में धर्म्म पक्ष तो अजेय है ही, सर्कारी सिपाही भी वीर थे पर वह अन्याय पक्ष पर लड़ रहे थे, उन विचारों को केवल वीरता से क्या होता?

शघाई में शीघ्र ही प्रजातन्त्र की शासन बैठ गया। इस नगर में भी बहुत से यूरोपियन थे पर उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया गया, सर्कारी सेनाएँ थीं ही नहीं इस लिये डाकाओं आदिकी भाँति साधारण प्रजा को भी किसी प्रकार की क्षति या अत्याचार नहीं सहना पड़ा।

इसी के लगभग नैंकिंग में भी लड़ाई हो रही थी। यह नगर एक शहर पनाह अर्थात् दृढ़ दीवार से घिरा हुआ है, दीवार की लम्बाई (या घेरा) ११½ कोस है, नगर में उस समय ११,५०० सिपाही थे। यह तीन विभागों में विभक्त थे —

(क) तातारी जनरल तिएह लिआंग के नीचे २,००० मञ्चु।

(ख) जनरल चाग ह्सुन के नीचे ४००० पुराने ढंग के सिपाही।

(ग) नये ढंग के ५,५०० सिपाही।

मञ्चुओं पर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता था, पुराने ढंग के ४,००० सिपाही भी विश्वस्त थे परन्तु नये सिपाहियोंकी राजभक्ति पर-

सन्देह था। पहिले तो इनसे गोला बारूद आदि सामग्री छीन ली गयी। पर इससे असन्तोष घटने के स्थान में बढने लगा इस लिये इस शर्त पर इनकी सब सामग्री लौटा दी गयी कि यह नगर के बाहर चले जाय।

चारों ओर से विद्रोह के समाचार उड़ने लगे, तातारी जनरल तिएह ने नगर की ओर तोपों का मुँह कर दिया और यह घोषणा कर दी कि यदि किसी प्रकार का उपद्रव हुआ तो नगर उड़ा दिया जायगा। इसी बीच में पेकिंग से यह आज्ञा आयी कि विद्रोहियों से छेड़छाड़ न की जाय पर जनरल तिएह ने उसको अविश्वस्त समझ कर कुछ ध्यान न दिया।

बूढ़े जनरल चाग हसुन ने इनके भी कान काटे। यह विचित्र मनुष्य था। इसकी स्त्री स्वर्गीया राजमाता की मुँह लगी सहेली थी, इसी से इसकी इतनी पदवृद्धि हुई थी पर साथ ही इस में कई गुण भी थे। निरक्षर होते हुए भी, सैनिक विषयों में इसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और अत्यन्त क्रूर होते हुए भी इसके सिपाही इससे प्यार करते थे। कम से कम इस में यह गुण अवश्य था कि बिगड़ती हुई सैनिक दशा को भी एक बार सँभाल लेता था। इसके बीर होने में भी कोई सन्देह नहीं था पर इसकी वीरता पाशव प्रकार की थी। जैसे बुल बुल चारो के लिये लड़ते हैं वैसे ही यह धन के लिये लड़ता था पर जब एक बार लड़ने लग गये तब हटना भी नहीं जानता था।

आपने पहिले तो यह घोषित किया कि मेरे पास २०,००० राजभक्त सिपाही हैं और फिर विद्रोहियों से कहला भेजा कि यदि मुझे ८००,००० (आठ लाख) तेल दो तो तुम से मिल जाऊँ आरम्भ में विद्रोहियों का बल कम था। इस लिये आप का भाव बढते बढते १,४००,००० (चौदह लाख) तेल तक पहुँच गया। पर जब विद्रोहियों का पक्ष प्रबल हो चला और उनकी जीत के लक्षण प्रतीत होने लगे तो आप ७,००,००० (सात लाख) पर उतर आये। अन्त में कुछ निश्चित नहीं हुआ बात

यह थी कि विद्रोह योंही इतने प्रबल थे कि बिना जनरल चाग को मिलाये भी उनका काम चल सकता था।

तब तक इन्होंने नगर में सैनिक विधान (मार्शल लॉ) जारी कर दिया। अभी थोड़े ही दिन हुए जब लाहौर मे मार्शल लॉ जारी हुआ तो उसका संक्षिप्त परन्तु व्यापक परिभाषा इस प्रकार की गयी थी। "It is the will of the Military Commandant to enforce law and order" अर्थात् "शान्ति रखने के लिये सैनिक अफसर की जो कुछ इच्छा हो उसका नाम मार्शल लॉ है" ऐसा कानून किसी पुस्तक मे तो लिखा जा सकता ही नहीं, क्योंकि यह वस्तुत कोई कानून नहीं एक व्यक्ति की इच्छा मात्र है। वह जो कुछ उचित चाहे कर सकता है। जैसा कि किसी ने कहा है "Martial law is negation of law" "कानून के प्रत्याख्यान का नाम सैनिक कानून है।"

मार्शल लॉ के नाम से जनरल चाग ने भी अपनी इच्छा से दिल खोल कर काम लिया। आपने एक बड़ी कृपा की कि कई दिनों तक नगर का सिक्यॉग फाटक नित्य एक घण्टे के लिये खोल देते थे। इस से लगभग सत्तर या अस्सी सहस्र मनुष्य निकल गये। जो रह गये उनको मार्शल लॉ का मजा मिला। ८ नवम्बर को घर २ तलाशी हुई। जिसके ऊपर रत्ती भर भी सन्देह हुआ वह मार डाला गया और उसका सिर काट कर लटका दिया गया। सन्देह के लिये कुछ विशेष प्रमाण की तो आवश्यकता थी ही नहीं। पास में रुपया होना पर्याप्त था। चोटी का न होना (क्योंकि विद्रोहियों ने चोटियाँ कटवा डाली थीं) तो पक्का प्रमाण था। कम से कम ४०० मनुष्य इस प्रकार मारे गये।

जैसे व्याघ्र को जब एक बार मनुष्य के रक्त की चाट लग जाती है तो वह उसी को ढूँढ़ता है उसी प्रकार जनरल चांग की भी प्यास बढ़ती गयी। १४ नवम्बर को यह आज्ञा निकली कि जिस किसी के पास किसी प्रकार का विद्रोही चिन्ह हो वह उसे तीन दिन के भीतर नाश कर दे।

लोगों ने सोचा चलो अब छुट्टी हुई। जिसके पास कोई विद्रोही पुस्तक, समाचार पत्र, विज्ञप्ति, झण्डा, फूल आदि था उस ने, यदि उसका छिपाना असम्भव था, उसे जला कर या अन्य प्रकार से नष्ट कर दिया। पर यह किस में क्षमता थी कि जनरल चाग की बुद्धि की तह तक पहुँच सके। लोग इस बात को भूल गये कि विद्रोही झण्डे का रंग श्वेत था। बस तीन दिन बीतने पर जो कोई श्वेत रंग का वस्त्र पहिन कर निकला वह मारा गया। श्वेत रंग की रुमाल भी विद्रोही चिन्हों में गिनी गयीं। जनरल चाग के गुप्तचर गलियों में इसी उद्देश्य से फिरते थे कि कोई बहाना मिले या यदि न मिले तो ढूँढ लिया जाय, और मार पीट हत्या का बाजार गर्म हो।

इन कार्यवाइयों का इष्ट फल भी हुआ। फल वही जो ऐसे कामों का होता है। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रजा में से विद्रोह भाव की गन्ध तक निकल गयी। पर यह सच्ची शान्ति न था। आँधी आने के पहिले हवा में, सन्नाटा खिंच जाता है गहिरा पानी सब से कम चञ्चल होता है। यह शान्ति भी वैसी ही थी। दमन नीति का यह अत्युज्वल उदाहरण था। लोगों के हृदय क्रोध से भर रहे थे पर उनको उस समय अपना क्रोध रोकना पड़ता था। यह दशा दमन करने वाले के लिये बड़ी भयंकर है। वह समझता है कि मैं ने आग बुझा दी है पर वस्तुतः वह अपने लिये एक छिपा हुआ ज्वालामुखी बनाता है। पता नहीं यह गुप्त आग कब फूट निकले और अपने प्रज्वलित करने वाले को भस्मसात् कर दे।

विद्रोही जनरल का नाम ह्यु तुष-चिह था। उन्होंने शंघाइ आदि से सिपाही एकत्र किये। जहाजों ने भी सहायता की। ३० नवम्बर को नगर पर आक्रमण हुआ। जनरल चाग का सब किया कराया मिट्टी हो गया। २० दिसम्बर को नगर विद्रोहियों के हाथ में चला गया।

जनरल चाग बड़ी वीरता से लड़े। जब नगर में से हटना पड़ा तो पास की पर्पल मौण्टेन (बैंगनी पहाड़) नामक पहाड़ी पर जा अड़े।

यह थी कि विद्रोह योंही इतने प्रबल थे कि बिना जनरल चाग को मिलाये भी उनका काम चल सकता था।

तब तक इन्होंने नगर में सैनिक विधान (मार्शल लॉ) जारी कर दिया। अभी थोड़े ही दिन हुए जब लाहौर में मार्शल लॉ जारी हुआ तो उसका सक्षिप्त परन्तु व्यापक परिभाषा इस प्रकार की गयी थी। "It is the will of the Military Commandant to enforce law and order" अर्थात् "शान्ति रखने के लिये सैनिक अफसर की जो कुछ इच्छा हो उसका नाम मार्शल लॉ है" ऐसा कानून किसी पुस्तक में तो लिखा जा सकता ही नहीं, क्योंकि यह वस्तुतः कोई कानून नहीं एक व्यक्ति की इच्छा मात्र है। वह जो कुछ उचित चाहे कर सकता है। जैसा कि किसी ने कहा है "Martial law is negation of law" "कानून के प्रत्याख्यान का नाम सैनिक कानून है।"

मार्शल लॉ के नाम से जनरल चाग ने भी अपनी इच्छा से दिल खोल कर काम लिया। आपने एक बड़ी कृपा की कि कई दिनों तक नगर का चि-नैग फाटक नित्य एक घण्टे के लिये खोल देते थे। इस से लगभग सत्तर या अस्सी सहस्र मनुष्य निकल गये। जो रह गये उनको मार्शल लॉ का मजा मिला। ८ नवम्बर को घर २ तलाशी हुई। जिसके ऊपर रत्ती भर भी सन्देह हुआ वह मार डाला गया और उसका सिर काट कर लटका दिया गया। सन्देह के लिये कुछ विशेष प्रमाण की तो आवश्यकता थी ही नहीं। पास में रुपया होना पर्य्याप्त था। चोटी का न होना (क्योंकि विद्रोहियों ने चोटियाँ कटवा डाली थीं) तो पक्का प्रमाण था। कम से कम ५०० मनुष्य इस प्रकार मारे गये।

जैसे व्याघ्र को जब एक बार मनुष्य के रक्त की चाट लग जाती है तो वह उसी को ढूँढता है उसी प्रकार जनरल चाग की भी प्यास बढ़ती गयी। १४ नवम्बर को यह आज्ञा निकली कि जिस किसी के पास किसी प्रकार का विद्रोही चिन्ह हो वह उसे तीन दिन के भीतर नाश कर दे।

लोगों ने सोचा चलो अब छुट्टी हुई। जिसके पास कोई विद्रोही पुस्तक, समाचार पत्र, विज्ञप्ति, झण्डी, फूल आदि था उस ने, यदि उसका छिपाना असम्भव था, उसे जला कर या अन्य प्रकार से नष्ट कर दिया। पर यह किस में क्षमता थी कि जनरल चाग की बुद्धि की तह तक पहुँच सके। लोग इस बात को भूल गये कि विद्रोही झण्डे का रंग श्वेत था। बस तीन दिन बातने पर जो कोई श्वेत रंग का वस्त्र पहिन कर निकला वह मारा गया। श्वेत रंग की रुमाल भी विद्रोही चिन्हों में गिनी गयीं। जनरल चाग के गुप्त गलियों में इसी उद्देश्य से फिरते थे कि कोई बहाना मिले या यदि न मिले तो ढूंढ लिया जाय, और मार पीट हत्या का बाज़ार गर्म हो।

इन फसादयों का इच्छित फल भी हुआ। फल वही जो ऐसे कामों का होता है। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रजा में से विद्रोह भाव की गन्ध तक निकल गयी। पर यह सच्ची शान्ति न थी। आँधी आने के पहिले हवा में सन्नाटा खिंच जाता है गहिरा पानी सब से कम चञ्चल होता है। यह शान्ति भी वैसी ही थी। दमन नीति का यह अत्युज्वल उदाहरण था। लोगों के हृदय क्रोध से भर रहे थे पर उनको उस समय अपना क्रोध रोकना ही पड़ता था। यह दशा दमन करने वाले के लिये बड़ी भयङ्कर है। वह समझता है कि मैंने आग बुझा दी है पर वस्तुतः वह अपने लिये एक छिपा हुआ ज्वालामुखी बनाता है। पता नहीं यह गुप्त आग कब फूट निकले और अपने प्रज्वलित करने वाले को भस्मसात् कर दे। -

विद्रोही जनरल का नाम न्यु सुथ-चिह था। उन्होंने शंघाई आदि से सिपाही एकत्र किये। जहाजों ने भी सहायता की ३० नवम्बर को नगर पर आक्रमण हुआ। जनरल चाग का सब किया कराया मिट्टी हो गया। २० दिसम्बर को नगर विद्रोहियों के हाथ में चला गया।

जनरल चाग बड़ी वीरता से लड़े। जब नगर में से हटना पड़ा तो पास के पर्पल मौंउटेन (बैंगनी पहाड़) नामक पहाड़ी पर जा डटे।

यद्यपि वहाँ ठहरना मृत्यु के मुँह में जाना था पर वह हटते ही न थे। बड़ी कठिनाइयों से उनके साथियों ने उनको वहां से हटाया। वहाँ से चल कर वह सूचन नामक स्थान पर फिर रुक गये। वहाँ उन्होंने कुछ सिपाहियों को एकत्र कर के फिर लड़ाई की पर अन्त में निराश होकर जब कोई साथी न रहा तो पेकिंग चले गये। उनको लोग 'The Butcher of Nanking' "नैंकिंग का कसाई" कहा करते थे।

नैंकिंग के पतन में डाक्टर मैक्लिन नामक एक अंग्रेज सज्जन ने भी सहायता दी थी। नगर में जनरल चू नामक एक सर्कारी अफसर थे। इनको गोली लगी थी। डाक्टर मैक्लिन इनको औषधि दे रहे थे। चू ने मैक्लिन से कहा कि हम लोग चाहते हैं कि नगर विद्रोहियों को दे दें पर पता नहीं विद्रोही कैसी २ शर्तें करेंगे। इस बात का निश्चय करने का भार मैक्लिन ने अपने ऊपर लिया। अपने को सन्दिग्धावस्था में डालकर वह विद्रोही सेनापति से मिले और उन्होंने शर्तें ठीक कर लाये। यह शर्तें ऐसी थीं कि इनको स्वीकार कर के नगर दे देने से सर्कारी सैनिकों का अपमान नहीं हो सकता था।

नगर लेकर सैनिकों ने बड़ी ही उत्तम और उत्तम प्रबन्ध किया। केवल एक दिन कुछ गड़बड़ हुई। एक जगह कुछ बारूद छिपा कर रक्खी थी। उसमें किसी ने आग लगा दी जिससे लगभग ४० विद्रोही सिपाही मारे गये। इस पर उनके साथी बिगड़ उठे और कुछ देर के लिये क्रोध में कुछ अनाचार भी कर बैठे। परन्तु उनके आफिसरों ने उनको शीघ्र ही शान्त कर लिया।

इस जीत ने प्रजातन्त्र का पक्ष और भी प्रबल कर दिया। गवर्नमेंट को पेकिंग के सुरक्षित रहने के विषय में आशंका उत्पन्न हुई। आशंका भी ठीक ही थी। अब सिवाय हानन और चिहली के सभी प्रान्तों में विद्रोह की आग थोड़ी बहुत लग गयी थी। जो प्रान्त बचे थे वह भी

अशान्ति से भरे थे, केवल समय देख रहे थे। २० नवम्बर के भीतर २ तेंशिन और मञ्चूरिया के बन्दरों को छोड़ कर सब बन्दर (जहाजों के ठहरने के स्थान) विद्रोहियों के हाथ में आ गये थे।

इनका सुप्रबन्ध लोगों को और इनकी ओर खींचता था। प्रत्येक प्रान्त में इन्होंने अस्थायी शासन (Provisional Government) स्थापित कर दिया था। जब तक सारे देश के लिये मिलकर कुछ निपटारा न हो तब तक प्रान्तों में पृथक २ शासन का होना उचित ही था। इन शासनों ने सभापति और मन्त्री, सेनापति आदि कुछ बड़े २ कर्म्मचारी नये होते थे। इनके अतिरिक्त इन्होंने यथासम्भव पुराने कर्म्मचारियों को निकाला नहीं। इससे कर्म्मचारी समुदाय भी प्रसन्न रहा और काम भी पूर्ववत होता रहा।

इन बातों को देखकर चोर डाकूओं तक में जातीय भाव जाग्रत हो आया। कैण्टन में पुलीस का प्रबन्ध लू लान्फिंग नामक प्रसिद्ध लुटेरे ने अपने ऊपर ले लिया था।

जनता के उत्साह का ठिकाना न था। ऐसा अनुमान था, और यह अनुमान सम्भवत ठीक ही रहा होगा, कि रूस और जापान इस ताक में थे कि कोई बहाना मिले और मञ्चूरिया पर चढ़ दौड़ें। पर लोगों ने ऐसा फूँक २ कर पांव रक्खा कि दोनों देखते ही रह गये। इस विषय में सभी पक्ष सहमत थे कि चाहे जो कुछ हो विदेशियों को किसी प्रकार का अवकाश न मिले, इस लिये उत्तरी मञ्चूरिया में दोनों पक्ष के लोगों ने मिल कर 'शान्ति सम्पादक समितियाँ' (Peace Preservation Societies) चीली और मुकदन आदि नगरों में स्वयं पहरे चौकी का प्रबन्ध किया।

यह सब बातें तो हो रही थी पर चीन सर्कार की दशा बिगड़ती जाती थी। उसे यह पता नहीं था कि कोई भी ऐसा व्यक्ति है या नहीं

जिस पर विश्वास किया जा सके या जो इस उलझन को सुलझा सकने में समर्थ हो ।



द्वादश अध्याय ।

दर्बारकी दुर्बलता ।

चीन की राजक्रान्ति से सम्बन्ध रखने वाली घटनाएँ इतने थोड़े काल में हुईं कि उनका वर्णन करते समय तिथिक्रम के अनुसार लिखना असम्भव है। इतने बड़े देश में एक ही साथ भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ घटनाएँ घटित हो रही थीं। यदि तिथिक्रम के अनुसार एक ही दिन होने वाली सब घटनाओंका एक साथ वर्णन किया जाय तो स्थान २ के वर्णन अपूर्ण से रह जायेंगे और पढ़ने में उनकी रोचकता घट जायगी, इसलिये हमने प्रधान स्थानों के क्रम से ही घटनाओं का उल्लेख किया है, केवल इतना ही ध्यान रक्खा है कि किस स्थान में विप्लवाग्नि पहिले, और किस में पीछे फूटी और फिर एक स्थान की कथा समाप्त कर के दूसरे स्थान की कथा उठायी है। इस से एक ही तिथि का कई बार आगे पीछे उल्लेख हुआ है।

इधर जब कि दूरस्थ प्रान्तों में एक से एक भीषण घटना हो रही थी पेकिंग शान्त नहीं था। यह सत्य है कि पेकिंग ही क्या, सारे चिहली प्रान्त में कहीं प्रत्यक्ष उपद्रव नहीं था पर इस से यह सिद्ध नहीं होता था कि पेकिंग (या चिहली प्रान्त) वैप्लविक भावों से शून्य था। बात यह थी कि पेकिंग ही मञ्चू शासन का केन्द्र था इसलिये मञ्चू सरकार का जो कुछ बचा खुचा बल वैभव था वह पेकिंग और उस के आस पास ही देख पड़ता था। यह सब जानते थे कि पेकिंग की भी चीनी जनता उन्हीं

उदार भावों की उपासक था जो अन्यत्र चीना हृदयों को दोलित कर रहे थे, यह भी असम्भव था कि विद्रोहिंश की गुप्त सभाओं की शाखा वहाँ न हो। बस इतनी भी ही बात थी कि गवर्नमेण्ट के कुछ और दुर्वल होने की प्रतीक्षा थी।

सर्कार की दुर्वलता दिन दिन बढ़ती ही जाती थी। जिस चीन सर्कार का इतना भय था वह अंग्रेजी शब्दोंमें (a colossus stufled with clouts) 'चीथड़ों से भरा हुआ देव' निकली। बात यह है कि एक तो प्रजा के ऐक्य के सामने किसी शासन की चल नहीं सकती।

अल्पानामपि वस्तूना, संहति कार्य्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नै, बध्यन्ते मत्त दन्तिन ॥

जब तक प्रजा में एका नहीं है तभी तक वह डरायी जा सकती है। दूसरी बात यह है कि प्रजा ने निर्भयता सीख लिया था। यह भी महा-मन्त्र है। वस्तुत तीर तलवार, बन्दूक, बम, मशीनगन, डरने की वस्तु नहीं है। यह नाशमान् है पर सत्य अमर है। पर हृदय में जो भय रूपी चोर बैठा हुआ है वह इन खिलौनों को भयंकर बना देता है। जैसा कि एक अवसर पर महात्मा गान्धी ने कहा था 'भय करना ईश्वर मे अविश्वास करना है' और फिर एशिया वासियों को तो यह देववाक्य सदैव स्मरण रखने चाहिये—

य एन वेत्ति हन्तारं, यश्चैनं मन्येत हतम्।
उभौ तौ न विजानीत, नायं हन्ति न हन्यते ॥

'इस अजर अमर सनातन आत्मा को कौन मार सकता है? फिर भय किसका? शरीर तो एक दिन यों भी जायगा फिर धर्म्म या देश की सेवा में इसको होम देने से बढ कर और कौन सी मृत्यु हो सकती है? जब किसी जाति में यह भाव आ जाता है तो उसकी इच्छाओं के साथ बलात्कार करना शासनों के लिये घातक होता है। चीन के इतिहास में

जिस समय यह अवस्था पहुंच गयी उसका कथन करते हुए मि. लॉटन कहते हैं "The sequel proved in striking fashion that 'no monarchy, no matter how sacred or ancient its traditions may be,' no matter how autocratic its power can survive save with the authority of willing subjects" "परिणाम ने यह सिद्ध कर दिया कि कोई राजसत्ता, चाहे वह कितनी ही पवित्र या प्राचीन मानी जाती हो, चाहे उसका बल कितना ही निरंकुश हो, बिना प्रजा की इच्छा से अधिकार प्राप्त किये बच नहीं सकती"

मञ्चू दर्बार को समझ में भी बात धीरे २ आने लगी थी पर यह समय चूक कर पछताने वाली बात थी। पहिले तो दर्बार ने रोब और डॉट से काम लेना चाहा पर जब धमकियां और बन्दर घुड़कियों से काम न चला तो वह संभल गया। धीरे २ प्रजा से प्रार्थना करने की नौबत आ गयी। समय २ पर जो घोषणाएं और राजाज्ञाएं निकलती थीं उनसे यह बात प्रगट हो जाती है। २१ अक्तूबर की निम्न लिखित घोषणा इस परिवर्तित अवस्था का प्रमाण है। वह स्पष्ट बतलाता है कि सर्कार का हाथ कॉपने लगा था —

"The Throne is ever imbued with broad-minded principles in its policy, and all the subjects of the Empire are viewed with equal benevolence, and without Our having once indulged in persecuting them to an extraordinary extent The ringleaders of the rebellion are really the greatest sinners of the most cruel type and are, of course, unpardonable in law ...... All presons who have been pressed bodily

into service by the rebels but who will save themselves by returning at once shall be permitted to turn a new leaf without being questioned as to their past behaviour, be they soldiers or people

......Should any roll-call book of the rebels be discovered, let it be instantly burnt and not the least enquiry be made that may cause distress"

"सम्राट् * की नीति सदैव उदार सिद्धान्तों से परिचालित होती है और साम्राज्य के सभी प्रजावर्ग समान दयादृष्टि से देखे जाते हैं। कभी उनको अत्यधिक कष्ट नहीं दिया गया।

विद्रोह के नेता सचमुच बड़े निर्दय प्रकार के महान् पापी हैं और नियमतः अक्षम्य हैं जो लोग दबाव डाल कर विद्रोहियों में मिला लिये गये हैं, पर तुरन्त लौटकर अपने को बचाना चाहते हैं उनको ऐसा करने की आज्ञा दी जायेगी और चाहे वह सिपाही या सामान्य मनुष्य हों उनसे उनके पिछले चालचलन के विषय में कुछ पूछताछ न की जायगी।

यदि विद्रोहियों की कोई नामावली मिल जाय, तो वह तत्काल जला दी जाय और कोई ऐसी जाँच न की जाय जिससे किसी को कष्ट हो।"

यह आशा की गयी थी कि इस घोषणा को देख कर बहुत से लोग विद्रोही दल को छोड़ देंगे पर आशा निराशा में परिणत हुई। अब लोग सर्कार का डरते ही नहीं थे। उससे क्षमा प्राप्त करने की परवाह किसको थी।

---

* चीनी घोषणाओं में सम्राट् के लिये "The Throne" 'सिंहासन' शब्द आता है पर मैंने सर्वत्र 'सम्राट्' से ही अनुवाद किया है। "सिंहासन की सम्मति है" इत्यादि बुरा प्रतीत होता है।

इधर युआन शिह काइ को बुलाने का बड़ा प्रबल प्रयत्न हो रहा था। १४ अक्तूबर को वह हुकुआन के गवर्नर नियत किये गये पर वह इतने से सन्तुष्ट नहीं थे। बिना पूर्ण अधिकार के वह इस झगड़े में पड़ना नहीं चाहते थे। अत उन्होंने सम्राट् को धन्यवाद देते हुए लिखा कि मेरा पाँव अभी अच्छा नहीं हुआ। वस्तुत पाँव में तो कुछ हुआ नहीं था पर जब उनको निकालते समय सर्कार ने झूठमूठ उनके पाँव के रोगी होने का बहाना निकाला था तो उन्होंने भी उसी बहाने से काम लिया। उनको लिखा गया कि तत्काल अच्छे हो जाओ पर सचमुच का रोग हो तो स्यात् अच्छा भी हो जाय। बहाने के रोग का क्या ठिकाना, वह तो रोगी की इच्छा से ही अच्छा हो सकता है। २७ अक्तूबर को वह हाइ इम्पीरियल कमिश्नर (High Imperial Commissioner) नियत हुए और उनको सैनिक और नाविक विभाग पर पूर्ण अधिकार दिया गया। तब कहीं जाकर पाँव अच्छा हुआ और वह घर से चले।

२२ अक्तूबर को जातीय सभा ने सम्राट् की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा उसमें मुख्यत तीन बातों की प्रार्थना थी –

(१) सभा से परामर्श लेकर नियमित शासन के नियम बनाए जायँ।

(२) तुरन्त दायित्व पूर्ण कैबिनेट (मन्त्रिमण्डल) स्थापित किया जाय और राजवंश का कोई व्यक्ति इसका सदस्य न हो सके।

(३) जिन लोगों ने कभी सर्कार के विरुद्ध कोई काम किया हो वह सब क्षमा कर दिये जायँ।

इस पर विचार होने भी न पाया था कि उत्तर से सेना के असन्तुष्ट होने का समाचार आया। उधर पेकिंग की अवस्था भी "वैद्युत" हो रही थी। अत घबराकर राजाभिभावक, राजकुमार चुन ने ३० अक्तूबर को सम्राट् के नाम से एक घोषणा निकाली, यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध घोषणा है। इसे 'Penitential Edict' 'पश्चात्तापात्मक घोषणा' कहते हैं –

Penitential Edict.

It is now three years since with much trepidation and misgiving we took up the arduous task of government and it has ever been our object to promote the best interests of all classes of our subjects. But we have employed incompetent ministers and have in our conduct of affairs of state, displayed all too little statesmanship ...

... ... Much of the people's wealth has already been taken and not a single measure beneficial to the people given in return ...

... ... By degrees it has come to this that when the people were seething with discontent we knew it not, when danger was imminent we were kept in ignorance...... ...In short, the whole Empire is in a ferment and men's minds on fire, the spirits of past Emperors are disturbed and the people all reduced to utter misery. The fault lies solely with us, and we hereby declare to all the world that we swear an oath with our subjects to bring about a general reform for the establishment of a full constitution ...

As regards putting an end to the distinction between Manchus and Chinese, the general edicts issued by the late Emperor must be put into immediate execution.

—We are but a weak body to be set above all your Ministers and people and the result is the outbreak of such a revolt as will destroy all the good performed by our ancestors.

We are grieved at our failure and filled with remorse, and we rely entirely on the support of our people and troops to restore prosperity to the millions of our subjects and to strengthen the foundations of our throne. That peace may succeed disorder and peril yield to safety depends entirely on the loyalty of our people on whom we rely implicitly. At the present time the financial and foreign situations are both desperate and, even if prince and people work in harmony the condition of the country may still be critical. But if the people disregard the national safety and allow themselves to be led away by counsels of revolt, some overwhelming calamity will befall them and then will China's future be dark indeed. Therefore is Our mind filled with anxiety and apprehension day and night. We earnestly hope that all Our people will understand Our meaning.

Let this be known to all.

पश्चात्तापात्मक घोषणा

तीन वर्ष हुए जब हमने अत्यन्त शर्म और आशंका के साथ शासन

का गुरु कार्य्य अपने हाथ में लिया। हमारी सदैव यही आकांक्षा रही है कि प्रजा मात्र का हितसाधन करें परन्तु हमने अयोग्य मंत्री नियत किये और राजकार्य्य में बहुत कम राजनीति का परिचय दिया

जनता का बहुत सा धन ले लिया गया है। पर प्रजाके कल्याणके लिये कोई काम नहीं किया गया है क्रमश दशा यहां तक पहुंची कि प्रजा अशान्तिसे भरी हुई थी पर हमको उसका पता न था, आपत्ति सिर पर थी हमको इसकी सूचना न दी गयी सारांश यह कि, सारा साम्राज्य उबल रहा है, लोगोंके हृदय क्रोधमें जल रहे हैं, गत सम्राटोंकी आत्माओंको क्षोभ हो रहा है और प्रजा अत्यन्त कष्ट में है। इसमें केवल दोष हमारा है और हम सारे संसारके सामने प्रजासे यह शपथ खाते हैं कि पूर्ण नियमित शासनको सस्थापित करनेके लिये जिन सुधारोंकी आवश्यकता है उनके लिये प्रयत्न करेंगे।

मञ्चू और चीनी के बीच में जो भेद हैं उन को दूर करने के लिये गत सम्राट् के समय में जो आज्ञाएँ निकलीं थीं उनके अनुसार तत्काल काम करना चाहिये।

तुम सब मन्त्रियों और प्रजावर्ग के ऊपर शासन करने के लिये हमारा शरीर अत्यन्त दुर्बल है। इसी का यह परिणाम है कि ऐसा विद्रोह उठा है जो हमारे पूर्वजों के सब सुकृतों को नष्ट कर देगा। हम को अपनी असफलता पर शोक और पछतावा है और हम को केवल अपनी प्रजा और सेना पर भरोसा है कि उन की सहायता से हमारी करोड़ों प्रजा में शांति पुनः स्थापित होगी और हमारे सिंहासन की जड़ और प्रबल होगी। उपद्रव के स्थान में शान्ति और भय के स्थान में सुरक्षितता का स्थापित होना केवल प्रजा की, जिस पर हम को पूरा भरोसा है, राजभक्ति पर निर्भर है। इस समय देश की आर्थिक और राजनैतिक दोनों अवस्थाएँ बिगड़ी हुई हैं और यदि राजा प्रजा मिलकर काम करें तब भी दशा शकास्पद होगी। पर यदि जनता जातीय रक्षा की ओर ध्यान न देकर

विद्रोहवादियों के बहकाने में आ जायगी तो उस पर बड़ी भारी आपत्ति आवेगी और तब चीन का भविष्य सचमुच अन्धकारमय हो जायगा। इसी लिये हमारा चित्त दिन रात चिन्ता और आशङ्का से भरा रहता है। हम को पूर्ण आशा है कि हमारी सम्पूर्ण प्रजायें हमारे अर्थ को समझ जायगी।

यह सब में घोषित कर दो।

ऐसी घोषणा भी कदाचित् ही कभी किसी नरेश ने निकाली होगी। यथा नाम तथा गुण, यह पूर्णतया पश्चात्तापात्मक है। इसकी पङ्क्ति २ से यही ध्वनि निकलती है कि दर्बार ने अपने को हारा हुआ मान कर प्रजा की शरण में डाल दिया है पर इससे क्या होता है,

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने॥

यदि यही बातें पहिले की और कहीं गयी होतीं तो लोग इनको धन्यवादपूर्वक ग्रहण करते, अब इनकी हँसी होती थी क्योंकि सबको विश्वास हो गया था कि अशक्त परम साधु' सर्कार सामर्थ्य हीन है और अपनी सत्ता बचाने के लिये भाँति २ की घोषणा निकाल रही है।

बात थी भी यही। जो स्वत्व प्रजा ने अब बलात् छीन लिये थे उन को अपनी ओर से प्रदान करने का ढोंग रचना व्यर्थ था। जो वस्तु जनता अपने बाहुबल से अर्जित कर सकती थी उसके लिये वह सर्कार से भीख क्यों माँगे और ऋणी क्यों बने। दान देने लेने का समय तो कब का बीत चुका था। अब तो वह समय आ रहा, था यों कहिये कि आ गया, था कि सर्कार को जो कुछ प्रजा से मिल जाय वही बहुत होता।

अस्तु, उपर्युक्त घोषणा के पीछे एक दूसरी घोषणा द्वारा यह नियम कर दिया गया कि राजवंश के कुमार मंत्रिपद पर न हो सकें और कैबिनेट के सदस्य भी न हों।

तृतीय घोषणा ने जातीय सभा को नियन्त्रित शासन के नियमों की पाण्डु लिपि शीघ्र प्रस्तुत करने की आज्ञा दी।

चौथी घोषणा द्वारा सब राजद्रोही पूर्णतया क्षमा कर दिये गये। यह आज्ञाएँ दो ही तीन दिनों के भीतर ? निकालीं। इनका तात्पर्य यह निकला कि जातीय सभा की २२ अक्तूबर की प्रार्थना स्वीकार हो गयी। इन घोषणाओं की सूचना इङ्गलैण्ड भेजते हुए, अंग्रेज राजदूत ने लिखा था।

"The Imperial utterances have graduallhy degenerated with the increasing weakness of the Government until they have ceased to carry much weight with the people" अर्थात् "......ज्यों २ गवर्नमेंट दुर्बल होती गयी सम्राट् की घोषणाएँ भी गिरती गयीं। (अर्थात् उनका स्वर धीमा होता गया) यहाँ तक कि अब जनता पर उनका बहुत कम प्रभाव पड़ता है।"

लाञ्चाउ के सिपाहियों का पहिले भी कथन आ चुका है। इन सिपाहियों का दिमाग बढ़ता ही जाता था। पेकिंग के उस भाग में जिसमें विदेशी लिगेशन थे एक गुप्त सभा हुई। इसमें जातीय सभा, युआन और इन सिपाहियों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। उसमें यह सिपाही इस बात पर अड़े रहे थे कि सम्राट् को चाहिये कि अपने को पूर्णतया जनता की शरण में डाल दें। प्रसंगेन, इस सभा से यह भी सिद्ध होता है कि उस समय युआन चुपके २ नवीन दल से मिल रहे थे।

२री नवम्बर को शासन सम्बन्धी नियमों के तत्काल उपस्थित किये जाने की आज्ञा हुई। इधर १ली नवम्बर को कैबिनेट ने पदत्याग कर दिया। युआन प्रधान मन्त्री चुने जाकर पेकिंग बुलाये गये। ३री नवम्बर को जातीय सभा ने शासन नियमों की पाण्डुलिपि उपस्थित की। उसकी भूमिका में लिखा था—

उन सब देशों में जिन में कि नियमित राजसत्ता है अंग्रेजी कान्स्टिट्यूशन (अर्थात् नियमित शासन का विधान) ही आदर्श माना गया है।

मत अपने शासन के लिये नियम बनाते समय हमने भी उसके सिद्धान्तों का अनुकरण किया है।

धारायें

१—राजवंश अच्छिन्न रहेगा ।

२—सम्राट् का शरीर पवित्र और

३—उनके अधिकार शासन के नियमों द्वारा नियमित रहेंगे ।

४—राज के उत्तराधिकार का प्रश्न शासन के नियमों द्वारा निर्णीत होगा ।

५—जातीय सभा शासन के नियमों को बना कर स्वीकृत करेगी और सम्राट् उनकी घोषणा करेंगे ।

६—इनमें यदि कभी सुधार होंगे तो जातीय पार्लिमेण्ट उनको प्रस्तुत करेगी ।

७—पार्लिमेण्ट के उच्च विभाग के सदस्य जनता द्वारा चुने जायँगे। यह चुनाव उन लोगों द्वारा होगी जिनमें कानून के द्वारा निर्दिष्ट कुछ विशेष गुण होंगे ।

८—प्रधान मन्त्री का चुनाव पार्लिमेण्ट करेगी और सम्राट् अपनी स्वीकृति द्वारा इस चुनाव को पक्का करेंगे । और मन्त्रियों का चुनाव प्रधान मन्त्री और नियुक्ति सम्राट् करेंगे । राजवंश का कोई व्यक्ति प्रधानमन्त्री, अन्य मन्त्री तथा उच्च कर्म्मचारी नहीं हो सकता ।

९—यदि पार्लिमेण्ट प्रधान मन्त्री से अप्रसन्नता प्रकट करे तो या तो मन्त्री पदत्याग कर देगा या पार्लिमेण्ट विसर्जित हो जायगी (अर्थात् टूट जायगी और उसके सदस्यों का फिर से चुनाव होगा) परन्तु किसी मन्त्रिमण्डल विशेष के मन्त्रित्वकाल में दो से अधिक पार्लिमेण्ट विसर्जित न होंगी ।

१०—सम्राट् जल और स्थल सेना के प्रधान अध्यक्ष हैं परन्तु साम्राज्य के भीतर पार्लिमेण्ट की इच्छा के अनुकूल ही सैनिक बल से काम लिया जायगा ।

११—सिवाय उन विशेष अवस्थाओं के, जिनका कि स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा, नियमों का पालन अनिवार्य्य है।

१२—बिना पालिमेण्ट की स्वीकृति के कोई सन्धि नहीं हो सक्ती पर जिन दिनों पालिमेण्ट की बैठक न होती हो उन दिनों युद्ध छिड़ सकता है और सन्धि भी की जा सक्ती है। ऐसी दशा में पालिमेण्ट की स्वीकृति पीछे लेनी होगी।

१३—हर साल का बजट (आय व्यय लेखा) पालिमेण्ट द्वारा स्वीकृत होना चाहिये और यथासम्भव बजट से अधिक व्यय न होना चाहिये।

१४—राजवंश के व्यय के लिये द्रव्य पालिमेण्ट स्वीकार किया करेगी।

१५—पालिमेण्ट द्वारा स्वीकृत हुए नियम सम्राट द्वारा घोषित होंगे।

१६—प्रारम्भ में जातीय सभा ही पालिमेण्ट मान ली जायगी।

(ऊपर कई साधारण धाराएँ छोड़ दी गयी है)।

सम्राट ने इन सब नियमों को स्वीकार कर लिया और ३ सप्ताह पीछे जब इनके अनुसार आवश्यक चुनाव हो चुके, उन्होंने निम्नलिखित शपथ खायी—

The Dynasty has been carried on for nearly 300 years. I, your descendent, Pueyi, since my enthronement have endeavoured to consummate the constitutional programme, but my policy and my choice of officials has not been wise. Hence the recent troubles. Fearing the fall of the Sacred Dynasty, I accept the advice of the National Assembly and swear to uphold the nineteen constitutional articles and to organise a Parliament, excluding nobles from administrative

posts I and my descendants will adhere to it for ever Your Heavenly Spirits will see and understand

"३०० वर्षों तक राजवंश चला है। हम आपका [illegible] पृथि, (बालक सम्राट् हुइयान तुग का जन्म नाम पुयि था), अपने अभिषेक के समय से नियमित शासन के प्रबन्ध का यत्न करता रहा हूं परन्तु मेरी नीति ठीक नहीं थी और मैंने योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति नहीं की। इसी लिये यह उपद्रव हुए। पवित्र राजवंश के पतन की आशंका में मैंने जातीय सभा का परामर्श मान लिया है और उन्नीसों धाराओं को पालन करने और पार्लिमेण्ट को गाढ़ा करने का इस बात को मानते हुए शपथ खाता हूं कि राजकुमारादि सदा उच्च पदों को न पावेंगे मैं और मेरे वंशज इसको सदैव मानेंगे। आपकी स्वर्गीय आत्माएं साक्षी हैं और समझती हैं।"

प्रायः ईश्वर या किसी देव देवा को साक्षी मान कर शपथ खाते हैं चीन में पितरों को ही देव तुल्य मानकर साक्षी मानते हैं।

इतना ही नहीं, टांगमिगनाग नामक गुप्त सभा के कर्मचारी उच्च सर्कारी पदों के अधिकारी बना लिये गये। सर्कारी कोष में सम्राट् के निजीकोष में चार लाख पौण्ड (साठ लाख रुपया) दिया गया। परन्तु परिणाम कुछ न निकला।

काले दत्तं वरं ह्यल्पं, अकाले बहुनाऽपि किं।

बात यह थी कि जातीय सभा तो इतने पर मान जाती पर अब सभा के अधिकार में भी बात न थी। पहिले २ सभा ही चीन के राजनीतिज्ञों की केन्द्र थी पर अब यह अवस्था नहीं थी। सभा के उपचारमय वातावरण ने उत्साहियों को दूर हटा दिया था। इन लोगों को विद्रोही दल में स्थान मिला था। सभा के विचार उदार थे, इसमें सन्देह नहीं पर उसमें नरम दल वालों का आधिक्य था। यह लोग किसी न किसी युक्ति से

११—सिवाय उन विशेष अवस्थाओं के, जिनका कि स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा, नियमों का पालन अनिवार्य्य है।

१२—बिना पार्लिमेण्ट की स्वीकृति के कोई सन्धि नहीं हो सकती पर जिन दिनों पार्लिमेंण्ट की बैठक न होती हो उन दिनों युद्ध छिड़ सकता है और संधि भी की जा सकती है। ऐसी दशा में पार्लिमेण्ट की स्वीकृति पीछे लेनी होगी।

१३—हर साल का बजट (आय व्यय लेख) पार्लिमेण्ट द्वारा स्वीकृत होना चाहिये और यथासम्भव बजट से अधिक व्यय न होना चाहिये।

१४—राजवंश के व्यय के लिये द्रव्य पार्लिमेण्ट स्वीकार किया करेगी।

१५—पार्लिमेंण्ट द्वारा स्वीकृत हुए नियम सम्राट् द्वारा घोषित होंगे।

१६—आरम्भ में जातीय सभा ही पार्लिमेण्ट मान ली जायगी।

(ऊपर कई साधारण धाराएँ छोड़ दी गयी हैं)।

सम्राट ने इन सब नियमों को स्वीकार कर लिया और ३ सप्ताह पीछे जब इनके अनुसार आवश्यक चुनाव हो चुके, उन्होंने निम्नलिखित शपथ खायी—

The Dynasty has been carried on for nearly 300 years I, your descendent, Pueyi, since my enthronement have endeavoured to consummate the constitutional programme, but my policy and my choice of officials has not been wise Hence the recent troubles Fearing the fall of the Sacred Dynasty, I accept the advice of the National Assembly and swear to uphold the nineteen constitutional articles and to organise a Parliament, excluding nobles from administrative

त्रयोदश अध्याय ।

युआन के शान्ति विषयक प्रयत्न ।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं युआन इम्पीरियल हाई कमिश्नर नियत किये गये और उन को सैनिक और नाविक विभागों पर अधिकार दिया गया। १ ली नवम्बर को कैबिनेट के पद त्याग कर पर जातीय सभा ने इन को प्रधान मन्त्री चुना। ८७ सदस्यों में से ने इस के लिये सम्मति दी। १३ नवम्बर को यह पेकिंग पहुंचे सिवाय राजकुमारों और कुछ उच्च कर्मचारियों के सब ने ही इन बड़े आदर से स्वागत किया।

युआन की योग्यता से सभी परिचित थे परन्तु उनका विश्वास पूर्ण रूप से किसी को नहीं था। दोनों पक्ष इन के सिद्धान्त और विचारों से असन्तुष्ट थे। गरम दल वाले तो इन को अति नरम और नरम दल वाले अति नरम समझते थे। पुराने कर्मचारी जो इनके पाँव को रोगी बनाकर इन को एक बार निकलवा चुके थे इन के उदार और सुधारपरक विचारों को पूरा वेप्लविक समझते थे। नवीन दल वाले इन से इसलिये रुष्ट थे कि यह राजवंश की रक्षा करना चाहते थे। उस पर तमाशा यह था कि यह सब जानते थे कि युआन स्वयं महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। इस से दोनों दल घबराते थे। पर इन सब बातों के होते हुए दोनों को यह विश्वास था कि बिना युआन के काम नहीं चल सकता, इसलिये दोनों ही उन्हें मिलाया चाहते थे।

साम्राज सिंहासन को बचा रखना चाहते थे। दूसरे दल वाले इससे असहमत थे। उनको १८ या १९ धाराओं की परवाह न थी। वह चीन से राजसत्ता को ही उठा देना चाहते थे। अब इसी दल के हाथ में पासा था। इसी लिये बिचारे दुर्बल दर्बार की दयाजनक घोषणाओं पर कोई ध्यान नहीं देता था।

ing him for three generations and he cannot go against them This is absurd If a robber robs us of wife, child and property and then asks us to guard his booty, shall we call him an enemy or a kind master? If he is of our views let him join us, otherwise, let him fix a date for battle' अर्थात् "युआन मुझसे कहते हैं वह हमको यह कह कर डराना चाहता है कि परराष्ट्र चीन को आपस में बाँट लेंगे। वह ऐसा नहीं करेंगे क्योंकि वह तटस्थ हैं पर यदि वह ऐसा प्रयत्न करेंगे तो चीन के चालीस करोड़ मनुष्य उनको बाहर निकाल देंगे। उन्होंने इसी डर से आज तक ऐसा प्रयत्न नहीं किया, अयोग्य मञ्चू शासन के डर से नहीं। हम जानते हैं कि उसने तुमको यहां इस लिये भेजा है कि उसको समय मिल जाय। वह हम में फूट उत्पन्न करना चाहता है तब वह हमको पृथक् २ प्रान्त २ करके दबा लेगा और स्वयं सम्राट् बन जायगा। वह योग्य मनुष्य है उससे कहो कि हम से मिल जाय फिर वह सभापति के आसन का पहिला अधिकारी होगा। वह कहता है कि मञ्चू उस पर तीन पुश्तों से कृपा करते आये हैं इस लिये वह उनका विरोध नहीं करता। यह पागलपन है। यदि कोई डाकू हमारी स्त्री, धन, सम्पत्ति छीन ले और फिर हम से लूट की रक्षा करने के लिये कहे तो हम उसे शत्रु कहेंगे या दयालु स्वामी? यदि वह हमसे सहमत है तो हमसे मिल जाय नहीं तो युद्ध की तिथि निश्चित करें।

इस उत्तर में युआन की नीति के लिये आशा का लेश भी न था। यह स्पष्ट था कि विद्रोही राजसत्ता को निकालने पर ही तुले थे। देश की दशा बड़ी गम्भीर होती जाती थी। ऐसा सुना जाता था कि रूस और जापान मञ्चूरिया और मंगोलिया पर झपटने के लिये बैठे थे। नाम मात्र का बहाना ढूंढ रहे थे। युआन ने नये कैबिनेट के सदस्यों के नाम

प्रकाशित किये। इनमें एक भी उदार कर्मचारी नहीं था। हंकाउ और नकिंग में युद्ध रोकने की आज्ञाएं भेजी गया। नकिंग के सर्कारी जनरल महोदय ने इस आज्ञा का जो सत्कार किया और उसका जो परिणाम हुआ उसका कथन पहिले आ चुका है। इन छोटे स्वेच्छागामी कर्मचारियों की भूल तो और भी सितम ढाती थी होता २ मेल रुक जाता था।

अवस्था वस्तुतः बड़ी गम्भीर था। ज्यों २ लड़ाई बढ़ती जाती थी सर्कार दुर्बल होती जाती थी। यदि यही दशा कुछ दिनों चली तो यह दुर्बलता ही उसे ले बीतेगा। विद्रोहियों का बल और क्रोध बढ़ता जाता था। इस आपस की लड़ाई में देश का बल और धन नाश हो रहा था यदि कोई बाहरी अपेक्षा लगा तो सम्भलना कठिन हो जायगा। बड़ी कड़ी समस्या थी। युआन की प्रखर बुद्धि और उनके नीतिचातुर्य्य की कड़ी परीक्षा था। बहुतों का अनुमान था कि युआन की हार होगी।

नवम्बर के आरम्भ में डाक्टर वू तिंग फांग ने, जो पहिले चीन सर्कार की ओर से अमेरिका में राजदूत थे और अब प्रजातन्त्र के परराष्ट्र विभाग के अध्यक्ष थे, युआन के नाम एक पत्र लिखा। इसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा सिवाय प्रजातन्त्र के और कोई शासन नहीं चल सकता। उस पत्र का अन्तिम वाक्य यह है "हमारा गला बैठ गया है हमारे पास अब आँसू भी नहीं रहे। अब और कुछ नहीं कहा जा सकता।

लगभग उसी समय उन्होंने 'हमारे विदेशी मित्र' (Our foreign friends) के नाम एक पत्र लिखा। यह उन विदेशियों के नाम जो चीनी जनता से सहानुभूति रखते थे एक प्रकार का खुला चिट्ठी है पर अत्यन्त महत्व का है। इसके भाव में ओज और भाषा में तेज भरा है।

The Manchu dynasty has by its benighted conceptions and barbaric leanings brought China to a position of degradation. The Foreign

मञ्चू राजवंश ने अपने अन्धकारमय विचारों और जाली मतों से चीन को निन्दय परिस्थिति में गिरा दिया है। पर राष्ट्रों ने विद्याप्रचार और विज्ञान के अंगीकरण की याचना की परन्तु सफल न हुए।

सैंकड़ों वर्षों से सन्तोषी और शान्तिप्रिय प्रजा ने मञ्चू राजवंश की परीक्षा की है पर वह दोषपूर्ण ही पाया गया। उस ने भूत काल में जितने वचन दिये सब झूठे और कोरे निकले, भविष्य के लिये यह जो उग्र वचन दे रहा है वह भी तत्त्व-हीन है और उन का विश्वास नहीं किया जा सकता।

जनता ने अब तो हल हाथ में लिया है, अब तो अन्त तक खोदना ही होगा। हम अपने विदेशी मित्रों से प्रार्थना करते हैं कि वह भी हमारे साथ मिलकर राजाभिभावक (राजकुमार चुन) से यह प्रार्थना करें कि सम्राट् पद त्याग कर दे जिस से कि इस लड़ाई का, जो सारे देश को हिला रही है, अन्त हो जाय। हमारा आचरण प्रत्यक्ष है और सारा संसार उसे देख सकता है। हम उसी लिये लड़ रहे हैं जिस लिये पूर्वकाल में अंग्रेज लड़े थे, हम उसी लिये लड़ रहे हैं जिस लिये अमेरिकन लड़े थे, हम उसी लिये लड़ रहे हैं जिस लिये कि प्रत्येक जाति, जो अब जाति कहलाने योग्य है, अपने समय में लड़ी थी। हम संसार में मनुष्य होने के लिये लड़ रहे हैं हम एक दुराचारी, दुराग्रही, प्रजापीड़क, शासन को दूर करने के लिये लड़ रहे हैं जिस ने चीन को निर्धन और अपमानित कर दिया है पर राष्ट्रों के मार्ग में बाधा डाला है और संसार की घड़ी की सुई पीछे कर दी है।"

वस्तुतः यह पत्र क्या था विद्रोहियों के मन्तव्यों की विज्ञप्ति थी। इस से यह पता लगता था कि चीनी जनता और उस के नेताओं का हृदय रस जल रहा था और उन को मञ्चुओं के प्रति कितना क्रोध था। इस अग्नि से भस्म न होना मञ्चुओं की शक्ति के बाहर था।

फिर भी युआन ने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया। राजाभिभावक

राजकुमार चुनसे लोग बहुत रुष्ट थे। वस्तुत इस विचारे का इतना अपराव नहीं था। हाँ यह अवश्यमेव अपराध था कि यह पुराने पार्षियों के दवाव में आ जाते थे। जो कुछ हो अव इन को वालि देने का विचार किया गया। ६ दिसम्बर को राजमाता ने यह घोषित किया कि राजकुमार चुन ने त्यागपत्र दिया है और उनका पदत्याग स्वीकार भी कर लिया गया है। उसी घोषणा मे यह भी लिखा था कि स्वय राजकुमार बुरे व्यक्ति न थे पर उन की नीति दुर्वलता ही देश की आपत्तियों का कारण था। इसलिये उन्होंने स्वय अपने को अयोग्य समझकर पद त्याग कर दिया। उनको (५०,००० पचास सहस्र) तेल की पेंशन दे दी गयी। अ त में जनता से शान्ति के पुन स्थापन के लिये प्रार्थना भी थी।

बालक सम्राट् के लिये दो निरीक्षक या अभिभावक नियुक्त हुए। इनमे एक, शिहहसु, तो मञ्चू दर्बारा थे दूसरे, हसू शिंहचाग चीना और युआन के अनुयायी थे।

३री दिसम्वर को हाकाउ के अंग्रेजा कासल की मध्यस्थता से यह निश्चय पाया कि युद्ध कुछ काल के लिये थम जाय। इसी क्षणिक शान्ति काल में यह निश्चय हुआ कि पन्द्रह दिनों के लिये लडाइ बन्द रहे और इस बीच में यह स्थिर किया जाय कि किन शर्तों पर सन्धि हा सकता है।

चान सर्कार की ओर से युआन का एक अनुयायी ताग शाओयि इस शान्तिसभा के लिये प्रतिनिधि चुना गया और विद्रोहियो ने डाक्टर वू तिंग–फाग को अपना प्रतिनिधि चुना। सर्कार चाहती थी कि सभा हाकाउ में हो पर विद्रोहियों क आग्रह करने पर शघाई मे हा उसका होना निश्चय हुआ।

यह जो कुछ हुआ सब युआन के ही परिश्रम का फल था। कोई और नीतिज्ञ होता तो कभा इतना न कर पाता। एक ता युआन स्वय बुद्धिमान थे और यह जानते थे कि कब नरम कब गर्म होना चाहिये। दूसरे दोनों पक्ष उनका न्यूनाधिक आदर करते ता रे विदेशी राजदूता में से प्राय सभी को युआन पर विश्वास था।

चतुर्दश अध्याय।

राजसत्ता का अन्त

१८ दिसम्बर को शघाइ के टाउन हाल में इस सधि परिषद् की पहिली बैठक हुई परन्तु इस बीच में कहीं २ लड़ाई फिर छिड़ गयी था इस लिये स्थगित हो गयी। २० को यह फिर बैठी। उसी दिन इगलैण्ड, फ्रांस, रूस, जर्मनी, अमेरिका और जापान के कासलों ने अपनी २ सर्कारों की ओर से निवेदन किया कि इस पारस्परिक झगड़े के जारी रहने से केवल चीन की ही नहीं परन्तु विदेशियों की भी क्षति हो रही है। अत उसको यथासम्भव शीघ्र ही बन्द करना चाहिये। यदि सच पूछा जाय तो विदेशियों की बहुत ही कम क्षति हुई थी, हाँ लड़ाई झगड़े से व्यापार तो कुछ न कुछ मन्द पड़ ही गया होगा, सो लड़ाई झगड़ा भी बहुत दीर्घ काल का नहीं, कोई पाँच ही महीने का था। परन्तु दुर्बल को परामर्श देना सरल है। सभी यूरोपियन राष्ट्रों ने घोर युद्ध करके सारी पृथ्वी को विपद्ग्रस्त कर दिया पर उनको कौन परामर्श देकर युद्ध से रोकता। युद्ध बन्द कराना बुरी बात नहीं है पर देश काल पात्र के अनुसार अच्छी बातें भी बुरी लगती हैं। बड़े राष्ट्र जब किसी दुर्बल राष्ट्र को परामर्श देते हैं तो वह धमकी के तुल्य होता है, और उसका मानना अनिवार्य सा हो होता है।

पहिला काम जो परिषद् ने किया वह शान्तिकाल का बढ़ाना था अर्थात् पन्द्रह दिनों के लिये जो लड़ाई बन्द कर दी गयी थी वह समय और बढ़ा दिया गया। अब शर्तों पर विचार होने लगा। ऐसे अवसरा

पर प्राय यही होता है कि दोनों पक्ष अपनी २ शर्तें उपस्थित करते हैं फिर दोनों का मिलान करके जो बात उभयमान्य होती है वह निर्णीत हो जाती है। जो पक्ष प्रबलतर होता है उसकी बातें अधिक मानी जाती हैं।

पर यहाँ तो तर्क वितर्क का अवकाश ही नहीं था। राजप्रतिनिधि ताग शाओ-यि की शर्तों पर विचार किये जाने का अवसर ही नहीं आया। डाक्टर वू तिंग-फाग आरम्भ से ही अपनी बात पर दृढ थे, और उनकी बात ही क्या थी, उसका साराश यह था कि चीन में प्रजातन्त्र स्थापित होना चाहिये और राजसत्ता को सदा के लिये पद त्याग करना चाहिये। और छोटी २ शर्तें देखी जायेंगी। पर जब तक प्रजातन्त्र का स्थापित होना निश्चय न हो जाय तब तक शान्ति कदापि २ नहीं हो सकती। इस एक शर्त के मान लिये जाने पर और शर्तें निर्भर हैं।

विचारा तागशाओ-यि बड़ी विपत्ति में पड़ा। उसकी परिस्थिति एक हारे हुए राष्ट्र के प्रतिनिधि की सी हुई जिसे विजेता की सभी बातें माननी पड़ती हैं। यदि बातें मान ले तो विचार ही क्या हुआ, जिस काम अर्थात् राजसत्ता की रक्षा के लिये आये थे वह काम ही नहीं हुआ यदि नहीं मानते तो भी गयी बीती चीन सर्कार किस बूते पर और कितने दिन लड़ेगी? अन्त में उसने अपनी ओर से डाक्टर फाग की शर्तें मान ली परन्तु यह कहा कि पेकिंग से उत्तर आने पर मैं निश्चित उत्तर दूगा।

पेकिंग में इस समाचार से बड़ी खलबली मची। चीनसर्कार के पास न तो रुपया था न सेना थी पर अपना अधिकार खोना किसे भाता है? लोभ बुरी रोग है, वह सब कुछ भुला देता है। इस समय चीन सर्कार की दशा ठीक इस श्लोक के भाव से मिलती थी --

लोभाविष्टो नरोवित्त, वीक्षते न तु चापदम्।
दुग्ध पश्यति मार्जारी, यथा न लगुडाहतिम्॥

मञ्चू दलने क्रुद्ध होकर ताग को राजद्रोही ठहराया। स्वय यूआन

पर आपत्ति आ जाती पर उन्होंने यह कहकर पिण्ड छुड़ाया कि तांग ने जो कुछ किया है वह बिना मुझ से पूछे किया है ।

पर इन ठण्डी गालियों से क्या होना था । विद्रोही दल दिन रात अथक परिश्रम से अपनी स्थिति दृढ़ कर रहा था जिससे कि पुन युद्ध छेड़ कर भी सर्कार को पिटना पड़ता । शंघाइ के शस्त्रागार में बराबर शस्त्र, बम, आदि बन रहे थे, तेज्जिन-यूकोलाइन से भेजने के लिये सेना प्रस्तुत था, समुद्र द्वारा चक्र सेना भेजने का भी प्रबन्ध हो गया था । उधर सर्कार के पास जो कुछ रहा सहा बल था वह भी घटता जाता था ।

इतना ही नहीं, प्रजातन्त्रवादी शासन का भी प्रबन्ध कर रहे थे । २१ दिसम्बर को १६ प्रान्तों के ३० प्रतिनिधि नर्किंग में एकत्र हुए और ३७ लोगों ने अमेरिका के सयुक्त प्रान्त की शासन पद्धति के आधार पर चीनी शासन पद्धति निश्चय किया । २६ दिसम्बर को डाक्टर सुनयातसन सभापति चुने गये और प्राचीन चीनी तिथिक्रम के स्थान में पाश्चात्य तिथिक्रम को अनुकरण करना स्वीकृत हुआ । अत १ जनवरी १६१२ चीनी प्रजातन्त्र के प्रथम वर्ष के प्रथम मास की प्रथम तिथि हुई । इसी समय सभापति को शासन मे सहायता देने के लिये नियमानुसार कैबिनेट की भी चुनाई हुई ।

डाक्टर सुनयातसन स्पेशल ट्रेन से शंघाइ से नैर्किंग आये । उनके साथ उनके चीनी और जापानी सैक्रेटरी भी थे । तोप की सलामी द्वारा उनका स्वागत किया गया और सैनिक गार्द साथ था सब से बढ कर स्वागत प्रजा का हर्ष था । जो मनुष्य जनता के हित के लिये काम करता है उसका यही पुरस्कार है । देश हितैषी के मार्ग में अनेक कण्टक हैं, विशेषत जो मनुष्य अपने देश को दासत्व शृखला से मुक्त करने का प्रयत्न करता है उसके लिये कर्तव्यपथ कृपाण की धार है । इसी को देख कर कुछ लोग इस नीति का आश्रय लेते हैं--

पर प्राय यही होता है कि दोनों पक्ष अपनी २ शर्तें उपस्थित करते हैं फिर दोनों का मिलान करके जो बात उभयमान्य होती है वह निर्णीत हो जाती है। जो पक्ष प्रबलतर होता है उसकी बातें अधिक मानी जाती हैं।

पर यहाँ तो तर्क वितर्क का अवकाश ही नहीं था। राजप्रतिनिधि ताग शाओ-यि की शर्तों पर विचार किये जाने का अवसर ही नहीं आया। डाक्टर वू तिंग फाग आरम्भ से ही अपनी बात पर दृढ थे, और उनकी बात ही क्या थी, उसका साराश यह था कि चीन में प्रजातन्त्र स्थापित होना चाहिये और राजसत्ता को सदा के लिये पद त्याग करना चाहिये। और छोटी २ शर्तें देखी जायँगी। पर जब तक प्रजातन्त्र का स्थापित होना निश्चय न हो जाय तब तक शान्ति कदापि २ नहीं हो सकती। इस एक शर्त के मान लिये जाने पर और शर्तें निर्भर हैं।

बिचारा तागशाओ–यि बड़ी विपत्ति में पड़ा। उसकी परिस्थिति एक हारे हुए राष्ट्र के प्रतिनिधि की सी हुई जिसे विजेता की सभी बातें माननी पड़ती हैं। यदि बातें मान ले ता विचार ही क्या हुआ, जिस काम अर्थात् राजसत्ता की रक्षा के लिये आये थे वह काम ही नहीं हुआ यदि नहा मानते तो भी गयी बीती चीन सर्कार किस बूते पर और कितने दिन लड़ेगी? अन्त में उसने अपनी ओर से डाक्टर फाग की शर्तें मान ली परन्तु यह कहा कि पेकिंग से उत्तर आने पर मै निश्चित उत्तर दूगा।

पेकिंग में इस समाचार से बड़ी खलबली मची। चीनसर्कार के पास न तो रुपया था न सेना थी पर अपना अधिकार खोना किसे भाता है? लोभ बुरी रोग है, वह सब कुछ भुला देता है। इस समय चीन सर्कार की दशा ठीक इस श्लोक के भाव से मिलती थी –

> लोभाविष्टो नरोवित्त, वीक्षते न स आपदम् ।
> दुग्ध पश्यति मार्जारी, यथा न लगुडाहतिम् ॥

मञ्चू दलने क्रुद्ध होकर ताग को राजद्रोही ठहराया। स्वय यूआन

इस शासन की ओर से एक दैनिक गजट निकलता था, उसके द्वारा सर्वसाधारण को इसके मन्तव्यों का परिज्ञान हो जाता था। इन लोगों ने तार द्वारा पेकिंग को सूचित किया कि यदि सम्राट् पदत्याग कर दें तो उनको जेहोल में रहने का स्थान दिया जायगा और समुचित पेंशन का प्रबन्ध कर दिया जायगा। उनकी प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रक्खा जायगा।

राजवंश के अन्य राजकुमारादि के लिये भी समुचित पोषण प्रबन्ध कर दिया जायगा।

इसके साथ ही तटस्थ राष्ट्रों के नाम एक विज्ञप्ति निकाली गयी। इसमें पुराने शासन के दोष दिखलाये गये और नये शासन की नीति का दिग्दर्शन कराया गया। उसका अन्तिम वाक्य यह था —

"With the message of peace and good will, the Republic of China cherishes the hope of being admitted to the family of nations not merely to share their rights and privileges but also to co operate with them in the great and noble task called for in the up building of the civiliza-tion of the world"

"शान्ति और सद्भाव का सन्देशा भेज कर चीनी प्रजातन्त्र यह आशा करता है कि वह राष्ट्रों के कुटुम्ब में सम्मिलित किया जायगा, केवल इसी लिये नहीं कि उनके अधिकारों और स्वत्वों में सहभागी हो प्रत्युत इसलिये कि पृथ्वी की सभ्यता के उन्नत करने के महान् और श्रेष्ठ काम में उनका सहयोगी बने।"

यह बातें युआन को कब अच्छी लग सकती थीं। जितना ही प्रजातन्त्र वादियों का प्रभाव चीन में या चीन के बाहर बढ़ता था उतना ही सर्कार का प्रभाव कम होता था। इस लिये वह चाहते थे कि किसी

न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये सम फलम्।
यदि कार्य्ये विपत्ति स्यात्, मुखरस्तत्र हन्यते ॥

परन्तु धीर, मेधावी, पुरुष ऐसी नीति की ओर आंख उठा कर नहीं देखते। यदि जनता की सेवा करनी है तो सुख क्या और दुख क्या? लोकहितसाधन पर प्राण भी निछावर हो जायें तो क्या बड़ी बात हुई। ऐसा मनुष्य सदैव एक फ्रेञ्च विद्वान के निम्नलिखित वाक्य के अनुसार निर्भयता से अपने मन्तव्य प्रकाशित करता है और उनके लिये हथेली पर प्राण लिये फिरता है —"अपने पर दोष लगने दो, जेल जाओ, अपराधी ठहराये जाओ, फाँसी पड़ो, परन्तु अपने मत को प्रकाशित करो। यह तुम्हारा अधिकार नहीं, कर्तव्य है।"

ऐसा मनुष्य पुरस्कार नहीं चाहता परन्तु फिर भी यदि उसकी कर्तव्य-परायणता का कोई पुरस्कार हो सकता है तो यही कि जिस जनता के लिये उसने सर्वस्व न्योछावर कर दिया वह उसकी आभारी हो। डाक्टर सुनने लगभग २० वर्ष तक भर्तृहरि के इस कथन को चरितार्थ किया था—

क्वचिद्भूमौशय्या क्वचिदपि च पर्यंक शयनम्,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि।
क्वचित्कंथाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्य्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥

आज उनका प्रयत्न सफल हुआ था। यद्यपि नाम को अभी राजसत्ता अवशिष्ट थी पर वस्तुत अब चीन में प्रजातन्त्र का ही अधिकार था। मञ्चू शासन मृतप्राय था। जिस देश के लिये उन्होंने कठिन तपस्या की थी उसने भी उनका समुचित आदर करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया। आत्मबलि का प्रसाद प्रत्यक्ष मिल गया।

उन्होंने उसी दिन मञ्चू शासन को दूर करने की शपथ खाई और नवीन शासन की नीति का कथन करते हुए यह आशा प्रकट की कि इस नीति के द्वारा चीन को पृथ्वी के अन्य राष्ट्रों के तुल्य स्थान मिलेगा।

परन्तु अब उत्तर चीन भी पहिले की भांति राजभक्त नहीं रह गया था। वहां भी इतर दल का प्रभाव बढ़ रहा था युआन के पूर्ण प्रयत्न करने पर भी वहां वैप्लविक विचार फैल रहे थे। इसमें युआन का दोष या उनके प्रबन्ध का अपराध न था। इस प्रकार के सार्वजनिक आन्दोलन ईश्वर की इच्छा से परिचालित होते हैं। उनको प्रणित करने वाली दैवी शक्ति मनुष्यों की इच्छा अनिच्छा की चिन्ता नहीं करती। ऐसे प्रवाह का कोई विरोध कर नहीं सकता, जो नेता कहलाता है वह स्वयं इसके साथ बह रहा है, जो प्रतिरोधी होता है वह आप नष्ट हो जाता है।

अस्तु, लोगों में यह किम्वदन्ती फैल रही थी कि युआन कहीं बाहर से कर्ज लेकर प्रजातन्त्र का विरोध करना चाहते हैं लोग इस बात से रुष्ट थे। १६ जनवरी को उनकी गाड़ी पर तीन बम फेंके गये वह तो बच गये पर लगभग २० दूसरे मनुष्य घायल हुए, जिन में से कुछ मर भी गये। बम फेंकने वाले पकड़े गये और उन्हों ने अपने को विद्रोही दल का सदस्य बतलाया, परन्तु डाक्टर सुनयात सन ने इस बात पर खेद प्रकट किया और युआन के पास सहानुभूतिसूचक तार भेजा। इसी प्रकार २७ जनवरी को तैज्जिन के गवर्नर जनरल चांग हुआइ चिह, पर बम फेंका गया पर वह भी बच गये।

इसी अवसर पर सर्कार ने युआन को मार्क्विस की उपाधि देनी चाही पर उन्होंने अपने को किसी भाँति बचा लिया।

इधर यह बातें हो रही थीं उधर संधि परिषद का काम बन्द था पर अब यह देर [illegible] नहीं रह सकता था। जितने काल के लिये लड़ाई बन्द की गयी [illegible] अब समाप्त होने वाला था। अब दो ही बातें हो सकती थीं, [illegible] तो फिर से युद्ध हो या संधि की शर्तें निश्चित की जायँ और वह भी शीघ्र।

युद्ध की सामर्थ्य सर्कार में थी या नहीं, उत्तर की समस्त सर्कारी सेनाओं के प्रधान सेनाध्यक्ष, जनरल तुआन चि-जुइ, प्रभृति कई गएय

भाँति स्वयं उनको अपना दबाव डालने का अवसर मिले। इसके लिये उन्होंने यह युक्ति निकाली कि उनके प्रतिनिधि तांग ने जो शर्तें स्वीकार की थीं उनको उन्हों ने अस्वीकार कर दिया। इस पर ताग ने त्याग पत्र दे दिया। युआन ने उसे स्वीकार करके डाक्टर फाग को लिखा कि हमारे साथ सीधे तार के द्वारा शर्तें निश्चय कर लीजिये।

पर डाक्टर फाग अनुभवी नीतिज्ञ थे। वह इस चाल में कहा फँसने वाले थे। उन्होंने लिख भेजा कि जिस समय तागशाओ यि नियत किये गये थे उस समय चीन सर्कार ने उनको पूर्ण अधिकार दे रक्खा था अत जो २ निश्चय उनके साथ हो चुका है वह पलट नहीं सकता। दूसरे, संघि परिषदों में कभी तार द्वारा काम नहीं होता। इस में असुविधा भी होती है, युआन की इच्छा हो तो वह स्वय शघाई आ जायँ।

इस राजनैतिक हार के पीछे, युआन ने अपने गिरते पक्ष को सभालने की दूसरा युक्ति सोचा। २८ दिसम्बर को सम्राट् की ओर से नियमत चुनी हुई पालिमेन्ट के लिये घोपणा का गयी। इससे भी कोइ लाभ न हुआ, उलटे सरकार की दुर्बलता ही प्रकट हुई। डाक्टर सुनयात सन के पक्ष ने ऐसी पालिमेण्ट में योग देना अस्वीकार किया जो सर्कार के बनाये नियमों के अनुसार चुनी गयी हो। फिर इस विषय में और भी कई मत भेद थे। युआन चाहते थे कि यह पालिमेण्ट पेकिंग या तेन्ज्जिन में बैठे, विद्रोही इसे नकिंग या शघाई में रखना चाहत थे। प्रभाव तो विद्रोहियों का बढ़ा हुआ था ही, परिणाम यह हुआ कि पालिमेण्ट एकत्र ही न हो पायी। इन मत भेदों को देख कर कुछ लोगों की यह सम्मति हो रही थी कि चीन, उत्तरीय और दक्षिणाय, दो भागों में बाट दिया जाय उत्तरीय भाग की राजधानी पेकिंग रहे और उसमें नियमित राजसत्ता शासन करे, दक्षिणीय भाग का राजधानी नैकिंग या शघाई हो और उसमें प्रजातन्त्रीय शासन पद्धति हो।

कैसा अस्थायी शासन बनाते। उन के मत का भी तो कुछ निश्चय नहीं था। एक समय वह स्वर्गीय सम्राट क्वांगह्यू के उदार प्रस्तावों को मिट्टी में मिला चुके थे। अब भी वह राजसत्ताके पक्षपाती थे ही, अधिक से अधिक यह कहा जा सकता था कि वह नरम विचारों के मानने वाले थे पर ऐसे व्यक्ति का क्या ठिकाना। इन बातों का उत्तर युआन ने यह दिया कि मैं अपने लिये कुछ नहीं चाहता जो कुछ कह रहा हूं वह लोकहित के लिये कह रहा हूं। इस पर उन से यह कहा गया कि यदि ऐसा है तो खुल कर प्रजातन्त्रवादियों में मिल जाओ। पहिले तो उन्हों ने आनाकानी की पर अन्तमें ऐसा ही करना पड़ा और उन्होंने अपने को प्रजातन्त्रके सिद्धान्तों का अनुयायी घोषित किया।

अब राजसत्ताके लिये कोई सहारा न रहा। युआन का ही बड़ा भरोसा था सो वह भी हाथ से जाता रहा। अब कुशल इसी में था कि सम्राट् प्रतिष्ठापूर्वक राजकार्य्यसे पृथक् हो जायँ।

१२ फर्वरी (१९१२) को सम्राट् की ओर से अन्तिम घोषणाएँ निकलीं। इनपर युआन और कैबिनेट के अन्य ६ सदस्यों के हस्ताक्षर थे। घोषणाओं में दिखलाया गया था कि सम्राट् ने श्रीमती राजमाता की आज्ञानुसार उनको निकाला था।

प्रथम घोषणा यह थी —

"In consequence of the uprising of the republican army, to which the people of the provinces responded, the Empire seathed like a boiling cauldron and the people were plunged into misery Yuan, therefore, commanded the despatch of commissioners to confer with the republicans with a view to National assembly being formed to decide upon the form of government Months elapsed without

मान्य व्यक्तियों ने एक प्रार्थना पत्र द्वारा सम्राट् को राजत्याग का परामर्श दिया था।

अत सधि की शर्तों का विचार रह गया। इस विचार में भी मूल बात सम्राट् का पदत्याग, राजसत्ता का निष्कासन और प्रजातंत्र का संस्थापन, अतर्क्य थी। जो कुछ तर्क वितर्क होना था वह ब्योरे की बातों पर, अर्थात् सम्राट् कब और कैसे पदत्याग करें, उनके और राजवंश के लिये क्या प्रबन्ध हो, इत्यादि इस विषय में विद्रोही स्वयं बड़ी उदारता दिखला रहे थे। वह राजवंश को अनावश्यक कष्ट नहीं देना चाहते थे। इतना ही नहीं डाक्टर सुनयात सन ने अस्थायी शासन* के सभापतित्व का पदत्याग कर वह पद युआन को दिलवाने की इच्छा प्रकट की।

युआन की यह इच्छा थी कि सम्राट् के पृथक होते ही विद्रोहियों ने जो अस्थायी शासन बनाया था वह भी पृथक् हो जाय और स्वयं उनको स्थायी शासन सङ्गठित करने का अधिकार मिल जाय। जब दूसरे पक्ष को उनकी इस इच्छा का पता लगा तो उन्हों ने यह शर्तें पढ़ा दीं।

(१) कोई मञ्चू अस्थायी शासनमें कोई स्थान नहीं पा सकता।

(२) अस्थायी शासनकी राजधानी पेकिंगमें न होगी।

(३) जब तक कि परराष्ट्र प्रजातन्त्रके स्थायी शासन को अङ्गीकार न कर लें और देश में शान्ति स्थापित न हो जाय तब तक युआन को अस्थायी शासन में कोई स्थान न मिलेगा।

डाक्टर सुनयातसन और उनके अनुयाइयों का यह काम कुछ अन्याय्य नहीं था। सब लोगोंके पृथक् हो जाने पर युआन न जाने

नोट—* मञ्चू सर्कार के उठ जाने पर चीन का शासन प्रजा तन्त्र के हाथ में आता पर अभी प्रजातन्त्र का सगठन पक्का नहीं था। कुल १९ ही प्रान्त सम्मिलित हुए थे और युद्धके कारण प्रतिनिधि भी ठीक २ नहीं चुने जा सकते थे, शान्ति स्थापित होने पर पुनः व्यापक चुनाव होना आवश्यक था। तब तक के शासन को 'अस्थायी शासन' कहा गया है।

दूसरी घोषणा इस प्रकार थी —

'According to the Cabinets memorial embodying e courteous treatment proposed by the people's my, they undertake the responsibility of pertual sacrifices befoı the Imperial ancestral mples and mausolea and also the completion Kwang-Hsu's mausoleum The Emperor is derstood to resign only his political power, hile the Imperial title is not abolished and the perial kinsmen—Manchus, Mongols, Mohomens and Tibetans will endeavour to fuse with e Chinese and to renounce racial differences & ejudicesı Ouı sinceıe hope is that peace will restored and that happiness will be enjoyed der the Republic"

"कैबिनेट के निवेदन के अनुसार, जिससे कि उस कुशाल आचरण पता चलता है जो सार्वजनिक सेना दिखलाना चाहती है, वह (प्रजा) ने ऊपर इस बात क भार लेती है कि राजवश के पुराने मन्दिरों र छतरियों * पर बराबर पूजा होती रहेगी और क्वाग हसू की री पूरी कर दी जायगी। सम्राट् ने केवल अपना राजनैतिक अधि- र त्या ग [य है। सम्राट् की उपाधि ज्यों की त्यों रहेगी। राजवंश के न्धी मञ्चू न, मुसलान और तिब्बतियों को चाहिये कि चीनियों मिल जायँ र गा जातिभेदों को छोड़ दें। हमारी सच्ची आशा है कि न्ति पुन स्थापित होगी और प्रजातन्त्र के शासन में लोगा को सुख ोगा।"

* छतरी।

a settlement being reached and it is now evident that the majority of the people are in favour of a republic From the preference that is in the people's hearts, the will of Heaven is discernible How could we oppose the desire of millions for the glory of one family? Therefore we, the dowager Empress and the Emperor, hereby vest the sovereignty in the people Let Yuan Shihkai organise with full powers a Provisional Republican Government and confer with the Republicans as to the methods of union that will assure peace to the Empire, thus forming a great republic by the union of Manchus Chinese, Mongols, Mohommedans and Tibetans"

"वैप्लविक सेना के, जिसके साथ कि प्रान्तों की प्रजा भी सहमत थी, विद्रोह के कारण साम्राज्य उबलती हुई कड़ाही की भांति आन्दोलित हो रहा था और प्रजा कष्टापन्न हो रही थी। इसलिये युआन ने वैप्लविकों के पास प्रतिनिधि भेजे कि वह एक जातीय सभा का स्थापित होना निश्चय करें जो भावी शासन पद्धति पर विचार करे। महीनों बीत गये पर कुछ निश्चय न हुआ और अब यह स्पष्ट है कि अधिकांश जनता प्रजातन्त्र के पक्ष में है। लोगों की हार्दिक इच्छा से ईश्वर की इच्छा का पता लगता है। मैं एक वंश की बड़ाई के लिये करोड़ों की इच्छा का कैसे विरोध कर सकता हूं? इसलिये हम, राजमाता और मैं, देश का स्वाम्य प्रजा को देते हैं। युआन को चाहिये कि एक अस्थायी शासन सगठित करें और प्रजातन्त्रवादियों से मिल कर ऐक्य के ऐसे उपाय निकालें जिनसे साम्राज्य में शान्ति फैले और मञ्चू, चीनी, मंगोल, मुसलमान, तिब्बती के मेल से एक महान् प्रजातन्त्र बने।

करके प्रजातन्त्र स्थापित किया और अपनी मन्त्री युआनको प्रजातन्त्रके मन्तव्योंके अनुसार अस्थायी शासन बनानेकी आज्ञा दी। ऐसा पृथ्वी के इतिहास में स्यात् कभी कहीं नहीं हुआ। इस बात ने बहुत कुछ पारस्पारिक द्वेष मिटा दिया और झगड़ेकी सम्भावना रोक दी, क्योंकि प्रान्तिक शासकोंको, जो प्रजातन्त्र का विरोध करना कदाचित् अपना कर्तव्य समझते, अब राजाज्ञा मिल गयी थी कि वह उसके अधीन रह कर काम करें।



तीसरी घोषणा द्वारा समस्त वायसरायों और सूबेदारों को सूचि किया गया कि जनता को प्रसन्न करने के लिये सम्राट् ने राजनैतिक अधिकारों को त्याग दिया।

यह निश्चय हुआ कि सम्राट जो अभी तक तार्चिंग (महान् पवित्र कहलाते थे अब केवल चिंग (पवित्र) कहलायेंगे और जिन लोगोंके उपाधियां मिली थीं वह केवल वर्तमान उपाधि धारियोंके जीवन भर मानी जायगी। पीछे, सब सामान्य चीनी नागरिक हो जायेंगे।

राजवशके व्ययके लिये चालीस लाख तेल प्रतिवर्ष दिया जान निश्चित हुआ। यह भी निश्चित हुआ कि सिक्कोंका सुधार हो जाने पर चालीस लाख तेलके स्थानमें चालीस लाख डालर दिया जाया करेगा।

बस आजसे चीनमें राजसत्ताका अन्त हो गया, सम्राट्की उपाधि रह गयी पर उस से क्या होता है। जो व्यक्ति सम्राट् कहलाता था वह जनतासे पेंशन पाता था। चीनी प्रजाने एक साथही दो कार्य्य सिद्ध कर डाले। एक तो उन्होंने अपने देशसे विदेशी शासन उठा दिया-मन्चू आधिपत्यको हटा कर अपनेको पूर्णतया स्वतंत्र बना लिया। दूसरे, उन्होंने चीनसे राजसत्ता उठा कर चीनमें प्रजातन्त्र स्थापित कर लिया। पाश्चात्य देशोंका यह कहना है कि प्राच्य देशों के लोग प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार नहीं चल सकते। वह बिना राजसत्ता के रह ही नहीं सकते। जापान में भी राजसत्ता का परित्याग नहीं किया था। चीन ने एक मात्र प्रजातन्त्र स्थापित कर के एक बड़े भारी प्रयोगका अनुष्ठान अपने ऊपर लिया था जिसके साफल्य से समस्त प्राच्य देशोंको शिक्षा मिल सकती थी। यह प्रजातन्त्र स्थापित भी विचित्ररूप से हुआ था। अन्य देशोंमें प्रजा लड़ भिड़ कर राजा, महाराजा, बादशाह को मार भगाती है और प्रजातन्त्र स्थापित करती है। यहां, लड़ाई हुई सही पर अन्त में मेल हो गया और स्वयं सम्राट् ने राजघोषणा द्वारा राजनैतिक अधिकारों का त्याग

until we reach perfection " "प्रजातन्त्र ही शासन का सर्वश्रेष्ठ रूप है। सारा संसार इस बात को मानता है। हम लोगों का एक ही छलाँग में स्वेच्छाचार से प्रजातन्त्र तक पहुँच जाना उस कठिन परिश्रम का परिणाम है जो आप लोग वर्षों से करते आ रहे हैं और जनता के लिये अत्यन्त सुखप्रद है। अब से जब तक हम उन्नति के शिखर तक न पहुँच जायँगे तब तक अपनी पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करेंगे।"

इन सब बातों से युआन के प्रजातन्त्रवादी होने में तो कोई सन्देह नहीं रहा अब यही प्रश्न रहा कि नये शासन में उनको क्या स्थान दिया जाय। इस विषय में भी विशेष विवाद का स्थान नहीं था। युआन को यदि कोई पद दिया जा सकता था तो सभापति का। उनकी योग्यता, उनका प्रभाव, यह सब इसी बात की अपेक्षा करते थे। सम्राट् की अन्तिम घोषणा भी जो उपचारतः प्रजातन्त्र की जन्मदात्री थी, यही इंगित कर रही था।

नवीन दल नैंकिंग को राजधानी बनाना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि युआन यहीं आकर सभापति का पद ग्रहण करें, परन्तु उस समय उत्तर में बड़ी अशान्ति थी। यदि पेकिंग से शासन का केन्द्र हटा लिया जाता तो बड़ा गड़बड़ मचती। अतः यही निश्चय हुआ कि पेकिंग ही पूर्ववत् राजधानी रहे।

१४ फर्वरी को नैंकिंग में एक बड़े महत्त्व का उत्सव मनाया गया। उसी नगर में मिंग वंश का जो चीन का अन्तिम चीनी राजवंश था, समाधियाँ था। उक्त तिथि को बड़े समारोह के साथ उनकी पूजा की गयी। सारे नगर में एक प्रकार का तिहवार मनाया गया। सहस्रों मनुष्यों के साथ डाक्टर सुनयात सेन समाधि मंदिर में गये। वहाँ मिंग वंश के संस्थापक सम्राट् हुंग वू का एक पुराना चित्र था। चित्र के पास एक चौकी था जो सम्राट् के सिंहासन के स्थान में थी। इसी चौकी के सामने सब लोगों ने नंगे सिर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

पञ्चदश अध्याय

प्रजातन्त्र की स्थापना।

राजसत्ता तो उठ गयी पर अभी प्रजातन्त्र की दृढ़ स्थापना नहीं हुई थी। प्राय प्रत्येक प्रान्त में स्वतंत्र अस्थायी शासन स्थापित हो गया था पर अभी यह शासन मिल कर काम नहीं करते थे। प्रधान अस्थायी शासन ने डाक्टर सुनयात सन को सभापति चुन लिया था पर अभी इस चुनाव को सारे देश ने स्वीकार नहीं किया था, करने का अवकाश ही नहीं मिला था। परराष्ट्रों ने भी अभी प्रजातन्त्र को अंगीकार नहीं किया था। यों तो जब राजसत्ता का राजनैतिक जगत् से निर्वासन हो चुका था तब प्रजातन्त्र सर्वमान्य हो ही गया और उसका अंगीकृत होना बाध्य था पर जब तक यह सब औपचारिक रूप से न हो जाय, उसकी स्थापना असन्दिग्ध नहीं कही जा सकती।

सम्राट् का अन्तिम घोषणा के प्रकाशित होने पर युआन ने डाक्टर सुन के पास यह पत्र भेजा "A Republic is the best form of Government The whole world admits this . . That in a simple bound we have passed from autocracy to republicanism is really the outcome of the many years, of strenuous efforts exerted by you all and is the greatest blessing to the people .. Henceforth we shall exert our utmost strength to move forward in progress

प्रजातन्त्र के स्थापित हो जाने से अब कइ काम करने होंगे। मैं प्रजातन्त्र को समुन्नत बनाने, स्वेच्छाचारी राजसत्ता की हानियों को दूर करने, शासन पद्धति के विधानों का पालन करने, देश के अभ्युदय को बढ़ाने, पाँचों जातियों (*) से युक्त प्रबल राष्ट्र को संगठित करने, का पूर्ण प्रयत्न करूँगा। जब जातीय सभा स्थायी सभापति चुनेगी, मैं अलग हो जाऊँगा।(*) मैं चीनी प्रजातन्त्र के सामने इस बात की शपथ खाता हूँ।"

इस के पीछे दो लामों (बौद्ध साधुओं) ने युआन को बुद्ध की दो स्वर्ण प्रतिमाएँ दीं।

इसी समय नवीन विचारों के प्राचुर्य का एक विलक्षण प्रमाण मिला। बहुत सी चीनी स्त्रियाँ यकायक जातीय सभा में घुस आयीं। पुलिस ने रोकना चाहा पर इन्हों ने उसे भी पीटा और द्वार खिड़की आदिक तोड़ डाला। सेना बुलानी पड़ी पर वह इतने पर भी न टलीं। सभा के सदस्य बिचारे घबराये कि कहीं हमारी भी दुर्गति न हो। अत उन्होंने एक मन्तव्य पास किया कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर राजनैतिक अधिकार दिये जायँ। इसी लिये इन स्त्रियों ने आक्रमण किया था। मन्तव्य स्वीकृत होने पर वे आप ही शान्ति से चली गयीं। इस अस्थायी शासन में केवल जातीय सभा में प्रस्ताव होने से तो कोई नया विधान बन नहीं सकता था। इस बात को सभा के सदस्य भली भाँति जानते थे पर उस समय उन्होंने इसी युक्ति से अपनी किसी प्रकार से रक्षा की।

जैसा कि युआन ने शपथ खाते समय कहा था, प्रजातन्त्र के स्थापित होने से, कई कामों के करने की आवश्यकता आ पड़ी। केवल सृष्टि से काम नहीं चलता—पालन और संरक्षण भी बड़ा कठिन काम है।

---

* पाँच जाति = चीना, मञ्चू, मङ्गोल, तिब्बती, मुसल्मान।

* अभी चीन के [illegible] युआन का अस्थायी सभापति है।

सारे चीनमें कहा किसीने इस चुनाव पर आक्षेप न किया। पृथ्वी के इतिहास में यह इस प्रकार का दूसरा उदाहरण था। जब अमेरिका स्वतन्त्र हुआ था तब इसी प्रकार सर्व सम्मतिसे जार्ज वाशिंगटन सभापति चुने गये थे।

२६ फर्वरी को एक छोटी सी दुर्घटना हो गयी। अब इतनी सेना की आवश्यकता तो थी ही नहीं, बहुत सी पल्टने तोड़ दी गयीं। इस पर कुछ सिपाहियोंने बलवा कर दिया। उन्होंने आग लगाना और लूटना आरम्भ किया। पेकिंग म अन्धेर मच गया। तेन्जिन में टकसाल नष्ट कर दी गयी। अन्य नगरोंमें भी कुछ न कुछ उपद्रव हुआ, पर युआन की दृढता से शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गयी। सैनिक विधान की घोषणा की गयी और कड़ाई से काम लिया गया। सैकड़ों सिपाही मारे गये। परिणाम यह हुआ कि बलवा शीघ्र ही ठण्ढा हो गया।

१० मार्चको पेकिंगके वाइवू यू हालमें यूआनने सभापतिका पद नियमत ग्रहण किया। सभी राजनैतिक दलोंके लोग उपस्थित थे। बड़े सामरोहके साथ वह उत्सव भी मनाया गया। पद ग्रहण करते समय उन्होंने यह शपथ खायी—

Since the Republic has been established, many works now have to be performed. I shall endeavour faithfully to develope the Republic, to sweep away the disadvantages attached to absolute monarchy, to observe the law of the constitution, to increase the welfare of the country, to cement together a strong nation which shall embrace all five races When the National Assembly elects a permanent President, I shall retire. This I swear before the Chinese Republic"

प्रजातन्त्र के स्थापित हो जाने से अब कई काम करने होंगे। मैं प्रजातन्त्र को समुन्नत बनाने, स्वेच्छाचारी राजसत्ता की हानियों को दूर करने, शासन पद्धति के विधानों का पालन करने, देश के अभ्युदय को बढ़ाने, पाँचों जातियों (*) से युक्त प्रबल राष्ट्र को सगठित करने, का पूर्ण प्रयत्न करूँगा। जब जातीय सभा स्थायी सभापति चुनेगी, मैं अलग हो जाऊँगा। (*) मैं चीनी प्रजातन्त्र के सामने इस बात की शपथ खाता हूँ।"

इस के पीछे दो लामों (बौद्ध साधुओं) ने युआन को बुद्ध की दो स्वर्ण प्रतिमाएँ दीं।

इसी समय नवीन विचारों के प्राचुर्य्य का एक विलक्षण प्रमाण मिला। बहुत सी चीनी स्त्रियाँ यकायक जातीय सभा में घुस आयीं। पुलिस ने रोकना चाहा पर इन्हों ने उसे भी पीटा और द्वार खिड़की आदिक तोड़ डाला। सेना बुलानी पड़ी पर वह इतने पर भी न टलीं। सभा के सदस्य विचारे घबराये कि कहीं हमारी भी दुर्गति न हो। अतः उन्होंने एक मन्तव्य पास किया कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर राजनैतिक अधिकार दिये जायँ। इसी लिये इन स्त्रियों ने आक्रमण किया था। मन्तव्य स्वीकृत होने पर वे आप ही शान्ति से चली गयीं। इस अस्थायी शासन में केवल जातीय सभा में प्रस्ताव होने से तो कोई पक्का विधान बन नहीं सकता था। इस बात को सभा के सदस्य भली भाँति जानते थे पर उस समय उन्होंने इसी युक्ति से अपनी किसी प्रकार से रक्षा की।

जैसा कि युआन ने शपथ खाते समय कहा था, प्रजातन्त्र के स्थापित होने से, कई कामों के करने की आवश्यकता आ पड़ी। केवल सृष्टि से काम नहीं चलता—पालन और संरक्षण भी बड़ा कठिन काम है।

---

* पाँच जाति = चीना, मञ्चू, मङ्गोल, तिब्बती, मुसल्मान।

* अभी चीन में अस्थायी शासन था, अतः युआन भी अस्थायी सभापति थे।

सारे चीनमें कहीं किसीने इस चुनाव पर आक्षेप न किया। पृथ्वी के इतिहास में यह इस प्रकार का दूसरा उदाहरण था। जब अमेरिका स्वतंत्र हुआ था तब इसी प्रकार सर्व सम्मतिसे जार्ज वाशिंगटन सभापति चुने गये थे।

२६ फर्वरी को एक छोटी सी दुर्घटना हो गयी। अब इतनी सेना की आवश्यकता तो थी ही नहीं, बहुत सी पल्टने तोड़ दी गयीं। इस पर कुछ सिपाहियोंने बलवा कर दिया। उन्होंने आग लगाना और लूटना आरम्भ किया। पेकिंग में अन्धेर मच गया। तेञ्जिन में टकसाल नष्ट कर दी गयी। अन्य नगरोंमें भी कुछ न कुछ उपद्रव हुआ, पर युआन की दृढता से शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गयी। सैनिक विधान की घोषणा की गयी और कड़ाई से काम लिया गया। सैकड़ों सिपाही मारे गये। परिणाम यह हुआ कि बलवा शीघ्र ही ठण्ढा हो गया।

१० मार्चको पेकिंगके वाइवू यू हालमें यूआनने सभापतिका पद नियमत ग्रहण किया। सभी राजनैतिक दलोंके लोग उपस्थित थे। बडे सामरोहके साथ वह उत्सव भी मनाया गया। पद ग्रहण करते समय उन्होंने यह शपथ खायी—

Since the Republic has been established, many works now have to be performed. I shall endeavour faithfully to develope the Republic, to sweep away the disadvantages attached to absolute monarchy, to observe the law of the constitution, to increase the welfare of the country, to cement together a strong nation which shall embrace all five races When the National Assembly elects a permanent President, I shall retire. This I swear before the Chinese Republic"

प्रजातंत्र के स्थापित हो जाने से अब कई काम करने होंगे। मैं प्रजातंत्र को समुन्नत बनाने, स्वेच्छाचारी राजसत्ता की हानियों को दूर करने, शासन पद्धति के विधानों का पालन करने, देश के अभ्युदय को बढ़ाने, पाँचों जातियों (*) से युक्त प्रबल राष्ट्र को संगठित करने, का पूर्ण प्रयत्न करूँगा। जब जातीय सभा स्थायी सभापति चुनेगी, मैं अलग हो जाऊँगा।(*) मैं चीनी प्रजातंत्र के सामने इस बात की शपथ खाता हूँ।"

इस के पीछे दो लामों (बौद्ध साधुओं) ने युआन को बुद्ध की दो स्वर्ण प्रतिमाएँ दीं।

इसी समय नवीन विचारों के प्राचुर्य का एक विलक्षण प्रमाण मिला। बहुत सी चीनी स्त्रियाँ यकायक जातीय सभा में घुस आयीं। पुलिस ने रोकना चाहा पर इन्हों ने उसे भी पीटा और द्वार खिड़की आदिक तोड़ डाला। सेना बुलानी पड़ी पर वह डटने पर भी न टलीं। सभा के सदस्य बिचारे घबराये कि कहीं हमारी भी दुर्गति न हो। अत उन्होंने एक मन्तव्य पास किया कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर राजनैतिक अधिकार दिये जायँ। इसी लिये इन स्त्रियों ने आक्रमण किया था। मन्तव्य स्वीकृत होने पर वे आप ही शान्ति से चली गयीं। इस अस्थायी शासन में केवल जातीय सभा में प्रस्ताव होने से तो कोई पक्का विधान बन नहीं सकता था। इस बात को सभा के सदस्य भली भाँति जानते थे पर उस समय उन्होंने इसी युक्ति से अपनी किसी प्रकार से रक्षा की।

जैसा कि युआन ने शपथ खाते समय कहा था, प्रजातंत्र के स्थापित होने से, कई कामों के करने की आवश्यकता आ पड़ी। केवल सृष्टि से काम नहीं चलता—पालन और संरक्षण भी बड़ा कठिन काम है।

* पाँच जाति = चीना, मञ्चू, मङ्गोल, तिब्बती, तुर्किस्तान।

* अभी चीन के अस्थायी शासन था, अतः युआन भी अस्थायी सभापति थे।

सारे चीनमें कहीं किसीने इस चुनाव पर आक्षेप न किया। पृथ्वी के इतिहास में यह इस प्रकार का दूसरा उदाहरण था। जब अमेरिका स्वतंत्र हुआ था तब इसी प्रकार सर्व सम्मतिसे जार्ज वाशिंगटन सभापति चुने गये थे।

२६ फर्वरी को एक छोटी सी दुर्घटना हो गयी। अब इतनी सेना की आवश्यकता तो थी ही नहीं, बहुत सी पल्टनें तोड़ दी गयीं। इस पर कुछ सिपाहियोंने बलवा कर दिया। उन्होंने आग लगाना और लूटना आरम्भ किया। पेकिंग में अन्धेर मच गया। तेन्जिन में टकसाल नष्ट कर दी गयी। अन्य नगरमें भी कुछ न कुछ उपद्रव हुआ, पर युआन की दृढ़ता से शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गयी। सैनिक विधान की घोषणा की गयी और कड़ाई से काम लिया गया। सैकड़ों सिपाही मारे गये। परिणाम यह हुआ कि बलवा शीघ्र ही ठण्ढा हो गया।

१० मार्चको पेकिंगके वाइवू यू हालमें युआनने सभापतिका पद नियमत ग्रहण किया। सभी राजनैतिक दलोंके लोग उपस्थित थे। बड़े सामरोहके साथ वह उत्सव भी मनाया गया। पद ग्रहण करते समय उन्होंने यह शपथ खायी—

Since the Republic has been established, many works now have to be performed. I shall endeavour faithfully to develope the Republic, to sweep away the disadvantages attached to absolute monarchy, to observe the law of the constitution, to increase the welfare of the country, to cement together a strong nation which shall embrace all five races When the National Assembly elects a permanent President, I shall retire This I swear before the Chinese Republic."

की सहायता का और शान्तिस्थापन में हाथ बटाया। यह काम इन्होंने अपने व्यक्तिगत दायित्व पर किया। ब्रिटिश सर्कार का भी व्यवहार वैसा था जैसा कि एक तटस्थ राष्ट्र का होना चाहिये। इगलैण्ड के परराष्ट्र सचिव, सर एडवर्ड ग्रे, ने अंग्रेजी राजदूत के नाम यह तार भेजा।

"We desire to see a strong and united China under whatever form of Government the Chinese people wish" "चीनके लोग अपना शासन जैसा उनको रुचिकर हो रक्खें हम चीन को ऐक्यबद्ध और बलयुक्त देखना चाहते हैं।" एक उदासीन राष्ट्र को दूसरे के घरेलु झगड़ों की ओर ऐसा ही भाव रखना चाहिये।

पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि अंग्रेजों को चीन के अभ्युत्थान से घबराहट नहीं हुई। कई अंग्रेजों को कई प्रकार की आशंकाओं ने आ घेरा। उन सब में एशियाटिक पेरिल, जिसकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है, प्रधान थी। सब से मृदु भय यह था कि जापान की भांति चीन भी व्यापार में योरप का प्रतिद्वन्द्वी होगा और थोड़े ही दिनों में चीन जापान मिल कर योरप के व्यापार को मिट्टी में मिला देंगे। कुछ लोगों को यह आशंका थी कि अब पृथ्वी से आर्य्य जाति का प्राधान्य मिट कर मंगोल जाति का प्राधान्य स्थापित हो जायगा, क्योंकि चीन जापान दोनों ही मंगोल देश हैं। इस दुर्दिन को दूर करने के लिये मिस्टर हिण्डमैन नामक एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ का यह प्रस्ताव था कि भारत को स्वायत्त शासन दे दिया जाय पर उसका सम्बन्ध इंगलैण्ड से बना रहे। गवर्नमेण्ट ने उनके परामर्श के अनुसार काम नहीं किया, इस पर वह पार्ले मार्ले ग्रेट "I saw, perhaps, as clearly as any the Mongolian is the coming and probably in the world, and and prosperous Aryan

सभापति बनाने में इन लोगों को चकित कर दिया। इस बात की कल्पना भी अमेरिकन शक्ति के बाहर थी कि कोई मनुष्य सभापतिपद को त्याग सकता है। अमेरिका के लोग इसी के लिये प्राण देते हैं। जैसा कि बोस्टन के Christian Register में एक लेखक ने लिखा था "For American politicians and candidates, this is an astonishing state of affairs and raises a doubt as to our absolute infallibility as promoters of public welfare and students of the principles of statesmanship" "अमेरिकन राजनीतिज्ञों और उच्चपदाभिलाषियों के लिये यह आश्चर्य जनक अवस्था है। और हम लोगों के लोकहित के निर्दोष साधक और राजनैतिक सिद्धान्तों के निर्भ्रामक जिज्ञासु होने के विषय में सन्देह उत्पन्न करता है," प्रजातन्त्र के उदय के विषय में इसी लेखक का कथन है "At last our self-complacent dream of superiority has been shattered by the exhibition of mental sagacity, moral power, and admirable self control in a nation that was supposed to be fettered and shackled by superstition, formalism, and a tyrranical ruling class" "हम लोग अपनी सर्वोत्तमता का स्वप्न देख कर अपने को प्रसन्न कर लिया करते थे परन्तु जब एक ऐसी जाति ने, जो मिथ्या विश्वासों, मिथ्या उपचारों और अत्याचारी शासकों द्वारा नितान्त जकड़ी मानी जाती थी, प्रतिभ दूरदर्शिता, नैतिक बल और प्रशंसनीय आत्म संयम, का परिचय दिया तब यह स्वप्न भग्न हो गया।"

अन्य परराष्ट्रों की अपेक्षा (अमेरिका को छोड़ कर) इंगलैण्ड का व्यवहार बहुत ही प्रशंसनीय रहा। हम कई स्थलों पर अंग्रेजी कासलों तथा अन्य अंग्रेज़ी सज्जनों का उल्लेख कर आये हैं जिन्होंने प्रजादल

की सहायता की और शान्तिस्थापन में हाथ बटाया। यह काम इन्होंने अपने व्यक्तिगत दायित्व पर किया। ब्रिटिश सर्कार का भी व्यवहार वैसा था जैसा कि एक तटस्थ राष्ट्र का होना चाहिये। इंगलैण्ड के परराष्ट्र सचिव, सर एडवर्ड ग्रे, ने अंग्रेज़ी राजदूत के नाम यह तार भेजा।

"We desire to see a strong and united China under whatever form of Government the Chinese people wish" "चीनके लोग अपना शासन जैसा उनको रुचिकर हो रक्खें हम चीन को ऐक्यबद्ध और बलयुक्त देखना चाहते है।" एक उदासीन राष्ट्र को दूसरे के घरेलू झगड़ों की ओर ऐसा ही भाव रखना चाहिये।

पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि अंग्रेजों को चीन के अभ्युत्थान से घबराहट नहीं हुई। कई अंग्रेज़ों को कई प्रकार की आशंकाओं ने आ घेरा। उन सब में एशियाटिक पेरिल, जिसकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है, प्रधान थी। सब से मृदु भय यह था कि जापान की भांति चीन भी व्यापार में योरप का प्रतिद्वन्द्वी होगा और थोड़े ही दिनों में चीन जापान मिल कर योरप के व्यापार को मिट्टी में मिला देंगे। कुछ लोगों को यह आशंका थी कि अब पृथ्वी से आर्य्य जाति का प्राधान्य मिट कर मंगोल जाति का प्राधान्य स्थापित हो जायगा, क्योंकि चीन जापान दोनों ही मंगोल देश हैं। इस दुर्दिन को दूर करने के लिये मिस्टर हिण्डमैन नामक एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ का यह प्रस्ताव था कि भारत को स्वायत्त-शासन दे दिया जाय पर उसका सम्बन्ध इँगलैण्ड से बना रहे। गवर्नमेण्ट ने उनके परामर्श के अनुसार काम नहीं किया, इस पर वह पार्ल मार्ल गज़ेट में लिखते हैं "I saw, perhaps, as clearly as any man could, that the Mongolian is the coming power in Asia, and probably in the world, and I hoped to see a great and prosperous Aryan

सभापति वनाने में इन लोगों को चकित कर दिया। इस बात की कल्पना भी अमेरिकन शक्ति के बाहर थी कि कोई मनुष्य सभापतिपद को त्याग सकता है। अमेरिका के लोग इसी के लिये प्राण देते हैं। जैसा कि बोस्टन के Christian Register में एक लेखक ने लिखा था "For American politicians and candidates, this is an astonishing state of affairs and raises a doubt as to our absolute infallibility as promoters of public welfare and students of the principles of statesmanship" "अमेरिकन राजनीतिज्ञों और उच्चपदाभिलाषियों के लिये यह आश्चर्य जनक अवस्था है। और हम लोगों के लोकहित के निर्दोष साधक और राजनैतिक सिद्धान्तों के निर्भ्रामक जिज्ञासु होने के विषय में सन्देह उत्पन्न करता है," प्रजातन्त्र के उदय के विषय में इसी लेखक का कथन है "At last our self-complacent dream of superiority has been shattered by the exhibition of mental sagacity, moral power, and admirable self control in a nation that was supposed to be fettered and shackled by superstition, formalism, and a tyrranical ruling class" "हम लोग अपनी सर्वोत्तमता का स्वप्न देख कर अपने को प्रसन्न कर लिया करते थे परन्तु जब एक ऐसी जाति ने, जो मिथ्या विश्वासों, मिथ्या उपचारों और अत्याचारी शासकों द्वारा नितान्त जकड़ी मानी जाती थी, प्रातिभ दूरदर्शिता, नैतिक वल और प्रशंसनीय आत्म संयम, का परिचय दिया तब यह स्वप्न भग्न हो गया।"

अन्य परराष्ट्रों की अपेक्षा (अमेरिका को छोड़ कर) इंगलैण्ड का व्यवहार बहुत ही प्रशंसनीय रहा। हम कई स्थलों पर अंग्रेजी कौंसलों तथा अन्य अंग्रेजी सज्जनों का उल्लेख कर आये हैं जिन्होंने प्रजादल

सप्तदश अध्याय ।

राजक्रान्ति के सामाजिक परिणाम ।

मानव जीवन के भिन्न २ अगों प्रत्यगों में ऐसा सम्बन्ध है कि एक का दूसरे पर तत्क्षण प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की धार्मिक, राजनैतिक सामाजिक, नैतिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक आदि परिस्थितिया अन्योन्याश्रित हैं इसलिये आर्य्य शास्त्रकारों ने इनको पृथक् करने का वृथा प्रयत्न न करके सबको एक व्यापक धर्म्म के क्रोड में डाल दिया था। यहा पर हमने भी 'सामाजिक' शब्द को प्राय इसी व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है।

राजक्रान्ति ने चीन में जा राजनैतिक परिवर्तन किया उसके साथ २ जनता के जीवन में और परिवर्तनो का होना स्वाभाविक ही था। परन्तु परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो प्रत्यक्ष होते ह। इनका अस्तित्व असन्दिग्ध होता है और यह अपने कारणों से शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे प्रकार के परिवर्तन वह हैं जो परोक्ष होते ह और जिनके निश्चित्त अस्तित्व का पता दीर्घ काल में लगता है। जो परिवर्तन मनुष्य के बाह्य जीवन से सम्बन्ध रखते हैं वह प्रथम और जो आन्तारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं वह द्वितीय कक्षा के होते ह।

अभी चीनी राजक्रान्ति को बहुत समय नहा हुआ है अत दूसरी कक्षा के परिवर्तनों के विषय में कुछ निश्चितरूप से लिखना अनुचित होगा, अत हम प्रथम कोटि के कुछ ऐसे परिवर्तनों का उल्लेख करेंगे जो राजक्रान्ति के प्राय साथ ही हुए और जिनका रूप अत्यन्त प्रत्यक्ष था।

India as a sort of breakwater against this tremendous flood Unfortunately, as I think, our policy has tended to throw the Indians into the Mongolian Camp" "जितना स्पष्टतया कि किसी मनुष्य के लिये देखना सम्भव था, मैंने देख लिया था कि यदि सारी पृथ्वी पर नहीं तो एशिया में भविष्य में मगोलियनों का ही आधान्य होगा और मुझे आशा थी कि इस अदम्यप्राय बाढ़ के सामने महान और वैभवशाली आर्य्य भारत बाँध का काम करेगा। हमारी नीति ने मेरी समझ में, भारतीयों को मगोलियनों का साथी बना दिया है"।

जिस समय चीन में राजक्रान्ति हो रही थी भारत अपने घरेलू वादविवाद में लग रहा था। प्रसिद्ध दिल्ली दर्बार हुआ था, सम्राट् पञ्चम जार्ज भारत आये थे, बगविच्छेद पलट दिया गया था, भारत सर्कार का शासन केन्द्र कलकत्ते से दिल्ली चला गया था। अत यहाँ लोग चीन की ओर जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं दे सके। परन्तु इस मे सन्देह नही कि चीन के अभ्युदय का भारत पर प्रभाव पड़ा है। चीन और भारत का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है, हम ने ही चीन का नामकरण किया है, हमने ही उसको पवित्र बौद्ध धर्म्म की दीक्षा दी है, हमारा देश चीन वासियों के लिये पवित्र देश है। हम इन बातों को भूले नहीं हैं; हमें आशा है कि चीन भी इन्हें भूला न होगा। हम चीनियों के देशप्रेम, उत्साह, आत्मोत्सर्ग की प्रशसा करते हैं। ईश्वर हम को भी यह सद्गुण प्रदान करे और चीन की नित्य महत्ताचि करे।

सप्तदश अध्याय ।

राजक्रान्ति के सामाजिक परिणाम ।

मानव जीवन के भिन्न २ अगों प्रत्यगों में ऐसा सम्बन्ध है कि एक का दूसरे पर तत्क्षण प्रभाव पड़ता है । मनुष्य की धार्मिक, राजनैतिक सामाजिक, नैतिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक आदि परिस्थितियां अन्योन्याश्रित हैं, इसलिये आर्य शास्त्रकारों ने इनको पृथक् करने का वृथा प्रयत्न न करके सबको एक व्यापक धर्म्म के क्रोड में डाल दिया था । यहां पर हमने भी 'सामाजिक' शब्द को प्राय इसी व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है ।

राजक्रान्ति ने चीन में जो राजनैतिक परिवर्तन किया उसके साथ २ जनता के जीवन में और परिवर्तनों का होना स्वाभाविक ही था । परन्तु परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं । कुछ तो प्रत्यक्ष होते हैं । इनका अस्तित्व असन्दिग्ध होता है और वह अपने कारणों से शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं । दूसरे प्रकार के परिवर्तन वह हैं जो परोक्ष होते हैं और जिनके निश्चित अस्तित्व का पता दीर्घ काल में लगता है । जो परिवर्तन मनुष्य के बाह्य जीवन से सम्बन्ध रखते हैं वह प्रथम और जो आन्तरिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं वह द्वितीय कक्षा के होते हैं ।

अभी चीनी राजक्रान्ति को बहुत समय नहीं हुआ है अत दूसरी कक्षा के परिवर्तनों के विषय में कुछ निश्चितरूप से लिखना अनुचित होगा, अत हम प्रथम कोटि के कुछ ऐसे परिवर्तनों का उल्लेख करेंगे जो राजक्रान्ति के प्राय साथ ही हुए और जिनका रूप अत्यन्त प्रत्यक्ष था ।

(क) आर्थिक

यों तो राजक्रान्ति होने से सारे देश की आर्थिक दशा में परिवर्तन होना सम्भव था पर यह बात तो निश्चित थी कि राजक्रान्ति के समय में ही बहुत से लोगों की आर्थिक स्थिति परिणत हो गयी। प्राय जितने पुराने सर्कारी कर्म्मचारी थे सब निकल गये—कुछ तो मारे गये, कुछ डर के मारे भाग गये। इनके स्थान में सहस्रों नये मनुष्यों को जीविकाए मिल गयीं। लूटपाट मार पीट के समय में कितने धनी दरिद्र और कितने वैभवशाली हो गये। जो लोग इधर उधर गुएंडे, उचक्के, लुटेरे, बने फिरते थे वह भी नयी सेनाओं में भरती हो गये—प्रति सिपाही को ६ तेल वेतन मिलता था। सामान्य कुली मजदूर तक अलभ्य हो गये। जो काम सात या आठ रुपये में हो जाता था वह अब तीस या चालीस में भी नहीं होता था।

व्यापार की गति भी बहुत कुछ रुक गयी पर व्यापारियों को किसी न किसी रूप में युद्ध के लिये बहुत कुछ सहायता देनी पड़ी। इससे उनकी आर्थिक दशा पूर्ववत् पक्की नहीं रह गयी। आगे चल कर इस बिगड़ी दशा को सुधरने में बहुत समय लगा।

(ख) वेष भूषा

शिखा का विरोध तो नवीन दल बहुत दिनों से करता आ रहा था, अब उसका अन्त ही हो गया। पर इसमें कुछ रुकावटें भी पड़ीं। लोगों को शिखा रखते २६० वर्ष हो गये थे। वह इस बात को भूल गये थे कि उनके दासत्व को सदा स्पष्ट करने के लिये ही यह प्रथा मञ्चुओं द्वारा निकाली गयी थी। अत ग्रामीण और अन्य अशिक्षित लोगों को शिखा से एक प्रकार का प्रेम हो गया था। इसलिये, क्रान्तिदल को इस विषय में बड़ी कड़ाई करनी पड़ी। चोटी कटवाने के लिये १५ दिन का अवकाश दिया गया। यदि एक बार दण्ड पाने पर भी किसी के शिर पर चोटी मिलती तो सिर काटने तक का दण्ड मिलता था।

चोटी के साथ पुराने वस्त्राभूषण का भी लोप हो गया। सामान्यत लोग एक प्रकार की ऊँची सी टोपी दिया करते थे पर यह मन्चुओं की चलाई हुई थी। विद्रोह आरम्भ होते ही टोपी के स्थान में एक प्रकार की नीली पगड़ी धारण की गयी पर, कुछ काल में वह भी चली गयी और उसकी जगह अंग्रेजी हैट और विशेषत नाइट कैप (रात की टोपी) ने ली।

यही गति और वस्त्रों की भी हुई है। पहिले लोग एक प्रकार का ढीला अचकन पहिनते थे। सामान्य लोग, लम्बी मिर्जाई पहिनते थे। जो धनाढ्य थे उनके बटन सोने चाँदी के होते थे और इस अचकन के ऊपर सोने, हीरे, मोती, के हार पहिने जाते थे। अब अंग्रेजी फैशन के कोट, पेंट, टाई, कालर, ओवर कोट, की धूम है।

इसी प्रकार सैनिकों के वस्त्र में भी परिवर्तन हुआ है। जो, पल्टनें नये ढंग पर क़वायद करायी जाती थीं उनकी वर्दियां तो अंग्रेजी ढंग की थी हीं पर बहुत से पुरानी चाल के झण्डे वाले सिपाही भी थे। अब झण्डे वालों के लोप होने से सर्वत्र अंग्रेजी ढंग की ही वर्दी देख पड़ने लगी। पहिले अफिसर लोग जब बाहर जाते थे तो एक प्रकार की नालकी (या कुर्सी) पर निकला करते थे, अब सब घोड़े पर निकला करते हैं।

(ग) मानसिक

बाहरी बातों में परिवर्तन के साथ ही लोगों के मानसिक भावों में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। दृष्टि कोण ही दूसरा हो गया। जैसा पहिले लिखा जा चुका है चीन की नैतिक और राजनैतिक प्रणाली का मूल था आज्ञापालन। राजसत्ता के उन्मूलन के साथ २ उसका उन्मूलित होना स्वाभाविक ही था। जब सम्राट् का विरोध करना वैध है तब दूसरों की, गणना ही क्या है। यही डर युआन को था और सत्य ही निकला।

बँधा पानी जब बाँध को तोड़ता है तो उसकी गति कुछ काल के लिये अरोध्य हो जाती है। घड़ी का पेण्डुलम जब एक ओर से नीचे उतरता

है तो बीच में नहीं ठहर सकता वरन् दूसरे सिरे तक चला जाता है। यही अवस्था मनुष्य के विचारों की होती है। बीच में रहना बड़ा कठिन है। अभी तक चीन के लोग अत्यन्त जकड़े हुए थे। उनके विचार भी दृढ़तम शृंखला से बद्ध थे, अब जो यकायक छुटकारा हुआ तो अत्यन्त निरंकुशता आ गयी। यह निरंकुशता स्थायी नहीं थी पर एक बार इसके प्रबल प्रवाह ने अनेक संस्थाओं को बहा दिया।

कांगफुत्सी और बौद्ध सिद्धान्तोंके अतिरिक्त चीनमें और भी एक प्रकार का धार्मिक मत प्रचलित था यह सब से प्राचीन था। इसके अनुसार बहुत से देवदेवियों की पूजा होती थी। युद्ध वर्षा रोगविशेष आदि के पृथक् २ अधिष्ठाता देवता थे। ग्रामों में लोग इनकी पूजा करते थे। स्त्रियां इनपर विशेष श्रद्धा रखती थीं। नियत अवसर पर पुरुष भी पुरानी परिपाटी के अनुसार इनकी उपासना कर लिया करते थे। परन्तु इनमें विशेष निष्ठा किसी को नहीं थी। लोग देवताओं को प्रसन्न रखना तो आवश्यक समझते थे पर उनको विश्वास था कि इन देव देवियों को धोखा देना अत्यन्त सरल बात है। कई पुराने किले में युद्ध के देवता की पूजा के लिये तोपें रहती थी। पीछे से लोगों ने उनको हटा कर उसी आकार की लकड़ी की तोपें रख दी। उनको विश्वास था कि देवता यही समझेगा कि तोपें अब भी ज्यों की त्यों है। एक अंग्रेज के पूछने पर उसे यही उत्तर मिला था "That war god, he belong number one fooloo" देवता प्रथम कक्षा का मूर्ख है"।

यह तो विद्रोह के पहिले की दशा थी। विद्रोह के आरम्भ होने पर यह ढोंग भी जाता रहा। लोगों ने कई मन्दिरों से मूर्तियों को उखाड़ कर गला डाला। मन्दिरों की सामग्री लेकर लड़ाई के काम में लायी गयी जो बड़े २ बौद्ध और अन्य मन्दिर बच गये उनमें भी उपासकों की संख्या कम हो गयी।

यह तो बुरा परिवर्तन हुआ पर कई अच्छी बातें भी हुई। स्त्रियों की

परिस्थिति में बड़ी उन्नति हुई। अपराधियों और बन्दियों के साथ बड़ा कर व्यवहार होता था वह बन्द हो गया, जनता के विचार सभी दिशाओं में उदार हो गये।

(घ) आचार व्यवहार।

मानसिक अवस्था का प्रभाव आचार व्यवहार पर पड़ता है, अत लोगों के आचार व्यवहार में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। मानसिक निरंकुशता से आचार स्वच्छन्दता उत्पन्न होती है। विद्रोह के पहिले चानियों में चाहे और कुछ दोष रहे हों या न रहे हो पर उनके सुशील होने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता था। परन्तु विद्रोह के समय से लोगों ने एक प्रकार का रूखापन धारण किया क्योंकि रूखापन 'न दबने' और 'स्वातन्त्र्य' का उपलक्षण सा प्रतीत होता है। अंग्रेजी कपड़े के साथ अंग्रेजी रीति रवाज ने भी प्रचार पाया। कुर्सी पर बैठने, घर को अंग्रेजी ढग से सजाने, छुरी काटें से खाने, आदि का प्रचार बढ गया।

मञ्चू और चानी का भेद तो मिट ही गया था, इसका भी बड़ा प्रभाव पड़ा। जिस समाज में एक भाग जन्मत बड़ा और दूसरा जन्मत छोटा माना जाता है वहां कई बुरी बात देख पड़ती हैं। जो बड़े माने जाते हैं उनमें अभिमान की मात्रा बढ़ रहती है, जो छोटे माने जाते हैं उनमें ईर्ष्या का प्राबुर्य्य होता है। यह दोनों के लिये बुरा है। भेदभाव के अभाव से अब न तो किसी को दुरभिमान करने का अवकाश था न किसी को डाह करने का आवश्यकता। बराबरी के भाव ने लोगों के आचरणों को वह स्वाभाविकता प्रदान की जो पहिले असम्भव थी। अब सब बराबर २ के मनुष्य हो गये।

विचारों के परिवर्त्तन ने कई पुरानी रीतियोंको प्राय बन्द कर दिया। विवाहादि के अवसर पर धूम धाम, आतिशबाजी छोड़ना, आदि होता था, यह अब झूठा आडम्बर सा प्रतीत होने लगा और त्याग दिया गया।

इसी प्रकार और भी कई छोटे बड़े परिवर्तन हुए और अभी होते जा रहे हैं।

कहने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि यह सब बातें एक ही दिन में गया या प्रजातन्त्र के स्थापित होने पर इनके अकायक दर्शन हो गये। । नहीं हो सकता। आचार विचार आदि का परिवर्तन यों नहीं होता। वर्तन के बीज तो बहुत दिन हुए बोए जा चुके थे, चीन और योरप के गे होने का यह अवश्यम्भावी परिणाम था। यूरप की सभ्यता वित है, कम से कम उस में जीवन को एक प्रधान लक्षण-गति—का दुर्य्य है। उस में अवगुण भी अनेक हैं पर गति का एक बड़ा भारी गुण इधर एशिया की सभ्यता में एक प्रकार की अचलता आ गयी है। जहाँ, इन दोनों सभ्यताओं की मुठभेड़ हुई, एक बार तो योरप की यता अपना बल दिखला ही देती है। बा० हरिश्चन्द्र ने उसके विषय लिखा है "भीतर तत्त्व न, ऊपर तेजी" भीतर तत्त्व हो या न हो, उसकी री तेजी काम कर जाती है। अत चीनी जीवन मे परिवर्तन होना श्चित और अनिवार्य्य था। मञ्चू शासन के लाख रोकने पर भी उसका ार हो रहा था पर अब तो कोई रोक ही नहीं रह गयी। अत नवीनता प्रगति और भी बढ़ गयी और जो बातें अप्रत्यक्ष रूप मे लोगों के वार क्षेत्र में घूम रही था अब वह अपरोक्ष रूप से उनके व्यावहारिक वन को परिचालित करने लगी, इसी लिये उनका इस स्थल पर वर्णन ना आवश्यक समझा गया है।



अष्टादश अध्याय।

शिशु प्रजातन्त्र की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ।

चीन के उत्साही सुधारक दल ने राजसत्ता को हटा कर उसके स्थान में प्रजातन्त्र स्थापित कर दिया। पर इतने ही से इतिकर्तव्यता नहीं हो सकती। यह तो कर्तव्य द्वार का उद्घाटन था। अपने ऊपर नये दायित्व भार को लेना था। मञ्चू शासन पर कटाक्ष करना तो सुकर था पर स्वय उसके अवगुणों से बच कर चीन को वस्तुत समुन्नत बनाना उतना सुकर नहीं था। जब किसी देश में इस प्रकार नया शासन स्थापित होता है तो उसके सिर अनेक नयी विपत्तियाँ घहराती हैं। टर्की में युग टर्क दल ने नियमबद्ध शासन की नींव डाली ही थी कि उनको बॉलकन और टिपली की लड़ाइयों में हठात् फँसना पड़ा। जिसके कारण टर्की बिचारा नितान्त दुर्बल हो गया। इसी प्रकार की आपत्तियों से चीन को भी बचना था "छिद्रेषु विप्रा बहुली भवन्ति" चीन के अनेक शत्रु इसी ताक में थे कि दुर्बलता के कुछ लक्षण प्रतीत हों और उत्पात किया जाय। दुर्बलता का होना भी कोई बड़ी बात न थी। यह असम्भव था कि इतने बड़े देश में एक साथ ही शान्ति हो जाय। अनेक प्रकार के भाव, विचार, महत्त्वेपणाएँ, राग, द्वेष, आदि जो सैकड़ों वर्षों से विश्रृंखलाबद्ध चले आते थे यकायक मुक्त हो गये, अब विना कुछ काल तक संघर्षण और परस्पर परिमर्दन के इनका ज्यों का त्यों बैठ जाना असम्भव था। इसी समय नीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता की परीक्षा थी। भीतर उठी हुई तरंग को शान्त करना और बाहर देश की प्रतिष्ठा को बनाये रखना नीति कौशल की कसौटी थी।

युआन ने पहिले चान्द्र वर्ष के स्थान में सौर वर्ष जेन रूज स्थापित कराया। चीन का सौर वर्ष अनन्त कालचक्र का अंग माना जाता था और अनन्त काल चक्र का आरम्भ पौराणिक सम्राट् ह्वाग ति (ईसा से २६९७ वर्ष पूर्व) के समय से माना जाता था। यह सौर वर्ष अंग्रजी वर्ष के द्वितीय मास के १८ वें दिन (१८ फ़रवरी) में आरम्भ होता था। इस नयी गणना के अनुसार प्रजातंत्र अनन्त कालचक्र के ४६०९ वें (२६९७+१९१२=४६०९) वर्ष में स्थापित हुआ। चीन वालों ने यह बड़ा अच्छा काम किया। सुभाते के लिये उनको एक विदेशी वस्तु (कालक्रम) को अपनाना पड़ा पर उन्होंने उसको चीनी रूप देकर चीनी बना लिया। उसका विदेशी पन ही जाता रहा।

चीन के लिये यह सौभाग्य की बात थी कि कुछ तो गत मञ्चूशासन और कुछ डाक्टर सुन के प्रयत्न से बहुत से चीनी विद्यार्थी विदेश हो आये थे। यह लोग योरप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों से अनेक उपयोगी विद्याएँ पढ़ कर लौटे थे। नवीन शासन ने इनको इनके योग्य ऊँचे २ सर्कारी पद दिये। राजनैतिक सुधारों के विषय में परामर्श देने के लिये अमेरिका से इस तत्व के ज्ञाता बुलाये गये और सैनिक सुधार के लिये जर्मन आफिसर नियुक्त किये गये। युआन ने अपने विश्वासपात्र ताग शाओ इ को प्रधान बनाया और अन्य मन्त्रियों का चुनाव उन्हीं को सौंपा।

युआन के शासन के दो प्रकार के विरोधी थे। उत्तर में तो वह लोग थे जो मञ्चू शासन को पुनः स्थापित किया चाहते थे। यह लोग सैनिक बल का प्रयोग किया चाहते थे। इनको तो युआन ने सहज में ही दबा लिया। पर दक्खिण में ऐसे लोग थे जो केवल प्रजातन्त्र की स्थापना से सन्तुष्ट नहीं थे। इनको युआन के सुधार अत्यन्त थोड़े और अधूरे प्रतीत होते थे। यह लोग वैध रूप से (अर्थात् व्याख्यानों, लेखों, आन्दोलनों, पुस्तकों, आदि के द्वारा) सदा उनका विरोध करते रहते थे। इसी उद्देश्य से इन्होंने एक (United League) 'संयुक्त संघ' खोल रक्खा था।

बात यह थी कि अभी तक लोगों को युआन पर पूरा २ विश्वास नहीं था। यह प्रजातन्त्रवादी ही नहीं, प्रजातन्त्र के सभापति थे, फिर भी नूतन दल उनसे परितुष्ट नहीं था। उनका पुराने शासन के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध रहा था, उनकी सारी राजनैतिक शिक्षा पुराने ढंग पर इस प्रकार हुई थी, कि यह नहीं कहा जा सकता था कि उन्होंने नवीन विचार परिपाटी को अपनाने में कहा तक सफलता प्राप्त की थी। उनकी विख्यात महत्त्वेषणा उनके आचरणों को और भी सन्दिग्ध बना देती थी यह किसी काम को पूर्ण सद्भाव से ही करें परन्तु लोगों को उनके उद्देश्य के विषय में शंका हो जाती थी। छोटी २ बातें भी इस सन्देह को बढ़ा दिया करती थीं। १३ मार्च १९१३ को गरमदल के दो प्रधान नेताओं को किसी ने गुप्त रीति से मार डाला। यह दोनों सज्जन युआन के कट्टर विरोधी थे। इनकी मृत्यु का समाचार फैलते ही, लोगों को यह सन्देह हुआ कि युआन ने इनकी हत्या करायी है। युआन ऐसे प्रतिष्ठित मनुष्य पर ऐसा सन्देह होना बड़ी ही क्षुद्रता का परिचय देता है पर तत्कालीन चीनी समाज के लिये यह कोई विचित्र बात नहीं थी। 'न रहेगी बास, न बजेगी बाँसुरी'। राजनैतिक विरोधियों से छुटकारा पाने की यह युक्ति बड़े २ चीनी राजनीतिज्ञों को प्रिय थी अतः युआन पर सन्देह होना स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार की कई बातों का यह परिणाम हुआ कि यागत्सी के तटस्थ प्रान्तों में विद्रोह हो गया, जिसके शान्त करने में बड़ी कठिनाई पड़ी।

पार्लिमेण्ट के बहुत से सदस्य, जैसा कि उनका कर्तव्य था, अपनी सम्मति स्वतन्त्रता के साथ देते थे। यह बात युआन को अभिमत न थी क्योंकि उनके कई प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाया करते थे। इस पर युआन ने इनमें से कई को किसी न किसी बहाने से पकड़वा लिया। इन लोगों के निकल जाने से उनका पक्ष प्रबल हो गया और पार्लामेण्ट ने उनको 'स्थायी सभापति' बना दिया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि

पार्लामेंएट के सदस्यों, मन्त्रियों, कर्म्मचारियों में परिवर्तन होता रहे, पर सभापति के पद पर युआन ही रहेंगे। इस चुनाव ने उनकी स्थिति और प्रबल कर दी। अब निकाले जाने का डर तो छूट ही गया, उन्होंने अपने अधिकारों को बढाने का प्रयत्न आरम्भ किया।

शासनपद्धति में आवश्यक सुधारों पर विचार करने के लिये एक समिति नियत हुई। इसने सभापति को जो अधिकार दिये वह युआन को बहुत सकीर्ण जान पड़े अत उन्होंने न केवल उस समिति को तोड़ दिया प्रत्युत गरम दल के सभी सदस्यों को पार्लिमेण्ट से निकाल बाहर किया। लोभ, चाहे वह धन, भूमि, ऐश्वर्य्य, किसी वस्तु का हो, भयकर विषवृक्ष है एक बार बीजारोपण होना चाहिये, फिर तो उसका विस्तार आश्चर्य्यकर प्रगति से होता है। जितनी ही तृप्ति होती है, उतनी ही तृष्णा बढती है इसीसे भर्तृहरि ने व्यथित होकर कहा था 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा' और 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।'

अब युआन के सिर ऐश्वर्य्य का लोभ भूत होकर चढा था। उन्होंने देखा कि जब तक पार्लामेंएट रहेगी, कुछ न कुछ विरोध की सम्भावना बनी ही रहेगी अत उन्होंने पार्लामेंएट को ही तोड़ दिया। उसके स्थान में एक सचिव मण्डल (Advisory Council) नियुक्त किया गया। इन आमात्यों को वेतन मिलता था। इसमें सन्देह नहीं कि यह लोग सभी योग्य व्यक्ति थे और इनके द्वारा कई सुधार हुए। पर थे यह युआन के ही गण, स्वतन्त्र राजनीतिज्ञ नहीं।

सच पूछिये तो अब चीन की शासन पद्धति का रूप ही और हो गया था नामत कोई परिवर्तन नहीं हुआ था पर वस्तुत राजसत्ता फिर आ गयी थी। युआन अब भी सभापति कहलाते थे पर उनकी परिस्थिति किसी स्वेच्छाचारी नरेश से कम न थी। उनके सचिव मण्डल के सदस्य वस्तुत उनके मन्त्री थे। कहने को यही कहा जाता था कि कुछ काल में पार्लामेंएट का अधिवेशन फिर होगा पर इस समय बिना पार्लामेंएट के

सब ही काम चल रहा था । युश्रान ने चीन म वही दशा कर दी थी जो इगलैंएउ में सन् १६२६ से १६४० तक प्रथम चार्ल्स ने का थी । वहाँ भी कागज पर शासनपद्धति मे पार्लामेण्ट का निश्चित स्थान था पर उसके बिना ही काम चलाया जा रहा था। इन सब बातों को देख कर ऐसा अनुमान होता था कि अब शीघ्र ही चीन में फिर राजसत्ता पूर्ण रूप मे स्थापित हो जायगी और युआन एक नवीन राजवंश के मूल पुरुष होंगे। वह कई बातें भी ऐसी करने लगे थे जो चीन के सम्राट् ही करते थे। प्रत्येक वर्ष सम्राट् स्वर्ग की पूजा करने जाया करते थे परन्तु प्रजातन्त्र के स्थापित होने पर यह प्रथा बन्द हो गयी थी। १६१३ मे युआन ने स्वयं स्वर्ग की प्राचीन शैली से पूजा की ।

अगस्त १६१४ में महासमर आरम्भ हुआ । युद्ध का इतिहास सब ही लोग जानते है । जापान ने इंग्लैण्ड, फ्रास, रूस का साथ दिया । उस ने योरप तो अपने सिपाही भेजे हो नहीं, हाँ अपनी जहाजों से अंग्रेजी साम्राज्य के पूर्वीय अंश की अवश्य रक्षा की । एक काम उसने और किया । कियाउचाउ उस समय जर्मनी ने चीन से ले रक्खा था । जापान ने उसे हस्तगत कर लिया । जो थोड़े से जर्मन वहाँ थे वह उसकी रक्षा के लिये पर्याप्त नहीं थे । चीन भी अंग्रेज आदि मित्र दल से मिल गया । उसने भी इतना काम किया कि चीन के बन्दरों में जितनी जहाजें थीं उनको जब्त कर लिया और जितने जर्मन मिले उनको कैद कर लिया इसके अतिरिक्त बॉक्सर युद्ध के समय से जो द्रव्य प्रतिवर्ष जर्मनी को दिया जाता था उसे भेजना बन्द कर दिया । उसने कई लाख मजदूर और कुली भी योरप भेजे ।

इस अवसर पर जापान ने चीन के साथ बड़ा अनुचित व्यवहार किया । युद्ध के कारण सब का ध्यान दूसरी ओर था अत कोई चीन की सहायता के लिये नहीं खड़ा हो सकता था । जापान ने क्षेत्र सूना पाकर चीन को बहुत दबाया और युद्ध की धमकी देकर उससे कई शर्तें स्वीकार

करालीं। इनमें कुछ शर्तें तो प्रकट हुईं, शेष गुप्त रक्खी गयीं।*

किसी प्रकार जापान से अपना पिण्ड छुड़ाकर, युआन फिर अपनी कूट नीति में लगे। उनका लक्ष्य प्रतिदिन प्रकट होता जाता था। यह सब की समझ में आता जाता था कि वह चीन में नया राजवंश स्थापित करना चाहते थे।

सन् १९१५ के मई या जून में चूआन हवाइ (शान्तिवर्द्धक गोष्ठी) नाम की एक समिति खुली। इस में सचिवमण्डल के भी कई सदस्य सम्मिलित थे। यह खुल कर केन्द्रीभूत व्यक्तिगत शासन (Concentrated individual rule) का पक्ष लेती थी। केन्द्रीभूत व्यक्तिगत शासन वह शासन है जिसमें एक व्यक्ति समस्त अधिकारों का केन्द्र हो। यह स्वेच्छाचारिता का नामान्तर मात्र है। लग भग इसी समय चीन सर्कार के एक अमेरिकन परामर्शदाता प्रोफ़ेसर गुडनाउ (Professor Goodnow) ने इसी प्रकार के शासन की स्थापना की सम्मति दी। उधर चारों ओर से सहस्रों प्रार्थनापत्र और आवेदनपत्र आने लगे जिनका तात्पर्य्य यह था कि प्रजातन्त्र के स्थान में युआन मूलक राजसत्ता स्थापित हो। यह तो स्पष्ट ही था कि यह सब युआन और उनके अनुचरों की करतूत थी। यह अनुमान इस बात से और भी दृढ़ हो गया कि लियाँग किच आओ ने, जो दृढ़ प्रजातन्त्रवादी थी, सचिवमण्डल से पृथक् होने की इच्छा प्रकट की।

८ अक्तूबर १९१५ को युआन ने एक घोषणा द्वारा प्रकट किया कि सचिवमण्डल के पास अस्थायी पार्लामेण्ट का एक आवेदनपत्र आया था जिससे प्रकट हुआ कि सारा देश कुन चू लिह हिएन (वैध नरेश Sovereign lord with a constitution) के लिये उत्सुक

---

* यह धमकीभिकर कथा किञ्चिद्विस्तार के साथ परिशिष्ट 'ख' में दी गयी है।

है । इस लिये युआन ने इस घोषणा में यह प्रस्ताव किया कि देश के निवासियों की इस विषय में सम्मति ली जाय ।

इस समाचार ने कई विदेशी राष्ट्रों को घबरा दिया । अमेरिका, जर्मनी, आस्ट्रिया तो चुप रहे क्योंकि चीन की घरेलू बातों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु इटली और फ्रांस के अनुमोदन से इंगलैण्ड, रूस और जापान ने युआन से यह प्रार्थना की कि इस प्रश्न का विचार युद्ध के अन्त तक स्थगित रक्खा जाय । उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया कि चीन की जनता की चाहे जो इच्छा हो, उसकी पूर्ति में विघ्न डालने की उनकी इच्छा नहीं थी, आशय केवल यह था कि कदाचित् कोई विपक्षी दल किसी प्रकार का उत्पात खड़ा कर दे जिसके कारण कि चीन युद्ध की शीघ्र और समुचित समाप्ति में यथार्थ योग न दे सके ।

युआन ने ऊपर से तो यह बात मान ली पर इस समय उनकी जैसी मानसिक स्थिति थी उसमें उनसे धृति की प्रतीक्षा करनी ही भूल थी यह कब का विवेक खो चुके थे और 'विवेक भ्रष्टानाम्, भवति विनिपात शतमुख ' जिस प्रकार फीका दीपक की ओर खिंचता है उसी प्रकार राज-लोभ उनको खींच रहा था । यह उनको सूझता ही न था कि वह पतनोन्मुख हो गये । लोभ ने उनकी बुद्धि पर मोह का कड़ा आवरण मढ़ दिया । न उनको अपनी शपथ की स्मृति थी, न विरोधियों के प्राबल्य का ध्यान, उनकी अन्तर्चक्षु के सामने राजसिंहासन की कल्पना ने चकाचौंध कर दी थी ।

लोभ प्रतिष्ठा पापस्य, प्रसूतिर्लोभ एव च ।
द्वेषक्रोधादि जनको, लोभ पापस्य कारणम् ॥
लोभेन बुद्धिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम् ।
तृषार्तो दु समाप्नोति, परत्रेह च मानव ॥
लोभ सदा विचिन्त्यो, लुब्धेभ्यो सर्वतो भय दृष्टम् ।

कार्य्याकार्य्य विचारो, लोभविमूढस्य नास्त्येव ॥

इन नीति के श्लोंको को युआन ने चरितार्थ कर दिया।

तीन बार उनको सम्राट् पद प्रजा की ओर से दिया गया और तीनों बार उन्होंने अस्वीकार किया। यह सब ढकोसला था। चौथी बार १३ दिसम्बर १९१५ को वह अभिषिक्त हो ही गये। दिखलाया यह गया कि इच्छा न होते हुए भी उनको प्रजा की बात माननी पड़ी।

यह तो हुआ पर युआनने अभी सम्राटका उपाधि धारण नहा की हा, काम कई ऐसे किये गये जो सम्राट ही कर सकते हैं। १ ली जनवरी १९१६ से हुङ्गहिएन (महाविधान) नामका एक नया सम्वत् चलाया गया। बहुतसे लोगोंको ड्यूक, प्रिंस, बैरन इत्यादि की उपाधियां दी गयीं। विदेशी राष्ट्र अवाक रह गये। डाक्टर सुन और उनके अनुयाइयों की सभी आशङ्काए सच्ची निकली। युआन अपने को न सभाल सके, धोखा दे ही गये।

पर अब यान पुराना चीन न था कि इतने पर चुप बैठा रहता। सारे देश में अपरितोष की ज्वाला भड़क उठी। विद्रोह के लक्षण स्फुट होने लगे। युनान प्रान्त ने २५ दिसम्बर को अपने को पृथक और स्वतन्त्र प्रजातंत्र घोषित किया। (यद्यपि युनान अब चीन का ही अश है, पर यह दिन सारे चीन में त्योहार माना जाता है। यह युनानका पारितोषिक है।)

युआन ने देखा कि इस प्रचण्ड आग का सामना करना असम्भव होगा। यदि कोई नितान्त स्वार्थी व्यक्ति होता तो स्यात् ऐसे प्रयत्न करके देश को रसातल ले जाता पर युआन इतने क्षुद्र नहीं थे। वह स्वार्थी और महत्वाकांक्षी होने परभी देशभक्त थे। अत उन्होंने स्वय आपत्ति सहन करना ही ठीक समझा। अपमान की ओर ध्यान न देकर सारा राजसी ठाट दूर कर दिया।

पर इतने पर भी शान्ति न हुई। उनके विरोधियोंने उनकी सारी

कूटनीतिका पर्दा खोल दिया। उनके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। इस अवस्था में, जब कि न केवल उनके राजनैतिक जीवन प्रत्युत संसारी जीवन का भी अन्त निकट था उन के लिये यह बड़े शोक की बात हुई। उन को इस का मार्मिक दुःख हुआ। परिताप, पश्चात्ताप, नैराश्य, ने उनके भौतिक शरीर को भी रोगग्रस्त कर दिया। ६ जून १६१६ को उनका देहान्त हो गया।

इसके दूसरे दिन उपसभापति लि युआन हुङ्ग ने सभापति का पद ग्रहण किया और त्वान कि—ज्वाइ प्रधान हुए।

शिशु प्रजातन्त्र के लिये यह कठिन परीक्षा का समय था। सम्भव है कि युआन के सम्राट हो जाने पर चीन का शासन अत्युत्तम होता पर प्रजातंत्र का तो लोप हो ही जाता और गोरी जातियों को यह कहने का अवसर मिल जाता कि प्राच्य जातिया इस प्रकार के शासन के योग्य नहीं हैं। चीन के प्रजातन्त्र की रक्षा हो जाने से प्राच्य जगत मात्र को उक्त शिक्षा मिल रही है। शिशु तो था ही, दात निकलते समय कष्ट होना स्वाभाविक ही था। पर इस कष्ट को उत्तीर्ण करके उसने अपने सजीव होने का परिचय दिया है। यह भी उसके लिये एक प्रकार से सौभाग्य की बात थी कि जिस समय वह इस प्रकार आपदग्रस्त था उस समय किसी और राष्ट्र को उसकी कठिनाईया से अनुचित लाभ उठाने का अवकाश ही नहा था, नहीं तो न जाने क्या अनर्थ हो जाता।

एकोनविंशत अध्याय।

चीन का भविष्य।

भविष्यद्वक्ता का काम अत्यन्त कठिन होता है। भौतिक पदार्थ जिन नियमों से परिचालित होते हैं उनको जान लेना अपेक्षया सरल है परन्तु चैतन्य जगत् के नियम अत्यन्त टेढ़े हैं तिस पर मनुष्य तो स्वयं एक जगत् है। मनोविज्ञान शास्त्र को उसकी आधी वृत्तियों का भी पता नहीं है। क्षण २ में न जाने क्या २ रूप पलटता है। यह अवस्था तो एक मनुष्य की है। जनसमूह का तो कहना ही क्या है। उसकी वृत्ति तो स्वभावतः विक्षिप्त रहती है। 'जितने मुँह उतनी बात' इसके अतिरिक्त यह भी कहना कठिन है कि किसी समूह विशेष पर किधर से क्या बाहरी प्रभाव किस समय पड़ेगा। इसी लिये किसी देश या जाति या राष्ट्र के भविष्य के विषय में कुछ कहना साहस मात्र है।

परन्तु इतिहास भी विज्ञान का एक अंग है। उसके अध्ययन से प्रतीत हुआ है कि मानव समाज कुछ न कुछ नियमबद्ध अवश्य है। उन नियमों को ध्यान में रखते हुए, हम चीन के विषय में कुछ कहने का साहस करते हैं।

पहिली बात जो स्मरण रखने योग्य है वह यह है कि चीन सहस्रों वर्ष से संसार के सभ्यतम देशों में गण्यमान्य रहा है। यदि इधर एक सौ वर्षों की बात छोड़ दी जाय तो वह योरप या अमेरिका से किसी बात में पीछे न था। इस का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस देश का इतिहास भूतकाल में महत्त्वपूर्ण नहीं था उसको भविष्यकाल में भी कठिनाई पड़ेगी

या तो अफ्रिका के हबशी भी उन्नति करके पृथ्वी की श्रेष्ठतम जातियों के अनुकरणीय हो सकते हैं पर यह बात सम्भव होते हुए भी कष्टसाध्य है। इस जाति के नेताओं का मार्ग कण्टकाकीर्ण होगा। उनको बाहर से आदर्श लेने पड़ेंगे। उनको अपनी जाति की कहानियों में ऐसे नाम न मिलेंगे जिनकी स्मृति दिला कर वह जनता को प्रोत्साहित कर सकें। सिवाय अन्य जातियों की स्पर्धा के वह उन्नति के लिये और कोई आयोजन हा नहीं ढूँढ सकते पर जो जातियां सभ्य और उन्नत रही हैं उनकी अवस्था हा और है। पतित होने पर भी उनमें उन्नति के बीज हैं। जो गिरा है वह उठ भी सकता है। चीन के पुराने इतिहास, उसके प्राचीन सम्राटों की यशोगाथा। में अब भी जादू भरा हुआ है। उन्नति पथ पर आरूढ़ हो कर चीन किसी और देश का अनुकरण या किसी और राष्ट्र से प्रतिस्पर्धा नहीं करता उसका भविष्य उसके भूत को पकड़ना चाहता है, चीन दरिद्र की भाँति दूसरों की सम्पत्ति की लालच नहीं करता, वह अपना खोया धन ढूँढता है। इससे आशा होती है कि उसका भविष्य सहज ही उज्ज्वल होगा।

दूसरी बात जो चीन के पक्ष में है वह यह है कि उसकी जनसंख्या बहुत बड़ी है। इतना ही नहीं, यह संख्या निकम्मे, आलसी, दुर्बल लोगों की नहीं, परिश्रमी और बलवान मनुष्यों की है, चालीस करोड़ कोई सामान्य संख्या नहीं है, पृथ्वी भर की जनसंख्या के पंचमांश से भी अधिक है। अभी तक यह लोग सुसंगठित नहीं हैं अतः इनकी सारी शारीरिक, और मानसिक, शक्ति एक ओर न लग कर छिन्न भिन्न हो जाती है। जिस समय यह शक्ति केन्द्रीभूत होगी उस समय इसका सामना एक तो क्या दस राष्ट्र मिल कर भी न कर सकेंगे। चीन के लोग असामान्य परिश्रमी होते हैं, उनको मद्यपान की लत नहीं, उनका अन्नभोजन योरप वालों की भाँति महँगा नहीं होता, उनका देश प्रत्येक प्रकार के भूमिज तथा खनिज सम्पत्ति से समृद्ध है, फिर उनकी भावी उन्नति में सन्देह ही कैसे किया जाय?

क्रिया सिद्धि सत्वे भवति महतानोप करणे ।

उसके सिर बड़ा भारी दायित्व है, उसको स्वार्थ के साथ २ परार्थ भी सिद्ध करना है । प्राचीन जगत् के देशों में से वही एक ऐसा देश बच रहा है जो अब तक स्वतंत्र है, प्राच्य जगत् के गण्य मान्य देशों में वही ऐसा देश है जिसने भौतिक लाभों के लिये अपनी आत्मा को बेच न दिया हो । उसको वर्तमान् जगत् में ऐसा व्यवहार करना है जिससे प्राचीन जगत् की नाम हँसाई न हो जिससे वह अब भी प्राच्य जगत् के लिये आदर्श बन सके ।

परिशिष्ट 'घ'

सम्राट् क्वांगस्यू का आत्महत्या का कथन हो चुका है। नीचे की चिट्ठी से उनकी तीव्र इच्छा के साथ ही उन कठिनाइयों का भी पता चलता है जो सुधार में बाधा डालती थीं जब स्वयं सम्राट को इस प्रकार संसार के मजबूर होना पड़ता था तब सामान्य लोगों की क्या दशा रही होगी—

Let the force of ruling go, let poison and assassination come With death, I shall deliver up my Imperial charge With death, I shall be worthy of my 400 000,000 subjects I would rather be assassinated and have my will made known to the people, than be a prince under a foreign yoke, or have myself saved to serve as a menial, and bear the disgrace of a lost empire From the time I was made to ruleten years a go, I have secretly been longing all the time for an opportunity to act I hated the idea of losing Anam Again I was indignant at the idea of being shorn of Manchuria and Formosa and a third time I was indignant at being shorn of Kiaochaw and Port Arthur My mind being full of indignation, I deeply pondered over all the circumstances, and I saw no other course but to risk my life on behalf of the Empire'

'राज करने का स्वाग जाने दो, (उसके स्थान में) विष और वध कारक आने दो। मृत्यु के साथ ही, मैं साम्राज्य के भार से मुक्त हो

की। इस बार अमरिका का ध्यान इस ओर गया, स्यात् इसी का यह परिणाम हुआ कि इस बार बात बहुत बढने न पायी।

युआन ने सम्राट् बनने की इच्छा प्रकट करके जापान को और भी अवसर दे दिया। उसको चीन के भिन्न २ राजनैतिक दलों को एक दूसरे से लड़ा देने का अच्छा अवकाश मिल गया।

'जापान मैगज़ीन' में एक लेखक ने चीन के प्रति जापान की जो नीति है उसे इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है।

"Those who neglect to keep themselves well-informed as to their real interests deserve no sympathy if they fail If the leaders of China are too egotistic to take an adequate interest in what is for the good of their country, what hope is then for China?

If she persists in her opposition to Japan there is no country of earth can save her Japan will take just what measures she deems best under the circumstances"

'यदि वह लोग जिन को अपने हित का पूरा २ ज्ञान नहीं है सफलता प्राप्त न कर सकें तो वह सहानुभूति के पात्र नहीं होते। यदि चीनके नेता इतने स्वार्थी हैं कि वह उन बातों पर पूरा २ ध्यान नहीं दे सकते जिनमें चीनका कल्याण है तो चीनके लिये क्या आशा हो सकती है।

यदि वह (चीन) जापान का विरोध करने पर आग्रह करे तो पृथ्वी का कोई देश उसे बचा नहीं सकता। ऐसी दशा में जापान जो कुछ उचित समझेगा करेगा'

चीन जापानका वैर अभी चला ही जाता है। वर्तमान सन्धि परिषद् भी इस झगड़े को न सुलझा सका "दैवो दुर्बल घातकः" उसने भी जापान का ही पक्ष लिया।

परिशिष्ट 'ग'

चीनका क्षेत्रफल ४,२००,००० वर्ग मील अर्थात् लगभग १,०७५००० वर्ग कोस और जनसंख्या लगभग ४००,०००,००० है अर्थात् प्रतिवर्ग कोस ३७२ मनुष्य रहते हैं।

चीन १८ प्रधान प्रान्तों में विभक्त हैं। इनके अतिरिक्त अब मञ्चूरिया ३ टुकड़ोंमें बांटा गया है और तुर्किस्तान एक पृथक प्रान्त बनाया गया है। इस प्रकार कुल २२ प्रान्त हुए। प्रधान प्रान्तोंके नाम यह हैं—चहक्रियाग, चिहली, फूकिएन, नानहुइ, हानान, हूनान, हूपे, कानसुह, कियांगसी, कियागसू, क्वांगसि क्वांगतुंग, क्वाइ चाऊ, शान सि, शानतुंग, स्जेचुआन, शेनसी, युनान, ।

विद्रोहके पहिले वार्षिक आय लगभग ३८४,१५०,००० तेलथी, (१ तेल लगभग २½रु) उस समय चीन सर्कार की ऋण १४०,०००,००० पौण्ड था। इस पर ७,४२७,४५० पौण्ड ब्याज देना पड़ता था (१ पौण्ड लग भग १५ रु०)

सम्राट् ह्सु आनतुग (पुयि) का अभिषेक—२ दिसम्बर १९०७
युआन की पदच्युति—जनवरी १९०८
प्रान्तीय सभाओं की पहिली बैठक—१४ अक्तूबर १९०९
जातीय सभा „ „ „ ३ अक्तूबर १९१०
पार्लिमेण्ट के शीघ्र बैठने की घोषणा—४ नवम्बर १९१०
हैंकाउ का प्रजावर्ग के हाथ में आना—११ अक्तूबर १९११
पश्चात्तापात्मक घोषणा—३० अक्तूबर १९११
युआन का प्रधान मन्त्री चुना जाना—१ नवम्बर १९११
स्जेचुआन प्रजातन्त्र स्थापना की घोषणा—२७ नवम्बर १९११
युद्ध का थमना—३ दिसम्बर १९११
राजकुमार चुनका पदत्याग—६ दिसम्बर १९११
सधिपरिषत् की प्रथम बैठक—१८ दिसम्बर १९११
नाकिंग पतन—२० दिसम्बर १९११
सुनयात सन का सभापति चुना जाना—२९ दिसम्बर १९११
सम्राट् ह्सु आन तुग का पदत्याग—१२ फरवरी १९१२
नैकिंग में स्वातन्त्र्य उत्सव—१४ फरवरी १९१२
डाक्टर सुनयात सनका पदत्याग—१५ फरवरी १९१२
युआन का सभापति पदग्रहण—१० मार्च १९१२
युआन का अभिषेक—१३ दिसम्बर १९१५
युआन का मृत्यु—६ जून १९१६

प्रधान सहायकपुस्तकों की सूची

---

1 Encyclopaedia Britannica—Vol VI-(11th edition)

2 Historians History of the world—Vol XXIV

3 China by R K Douglas (Story of the Nations' Series)

4 Empires of the Far East (Vol II) by Lancelot Lawton

5 Sun Yat Sen and the Awakening of China by James Canthe and C Sheridan Jones

6. Li Hung Chang by R K Douglas

7 *Problems of the Middle East by Angus Hamilton*

8 China by E H Parker

श्रौर 'Modern Review की पुरानी फाइल।

प्रताप-पुस्तक-माला

हमने अपने यहां से एक "ग्रन्थमाला" निकालना आरम्भ किया है। यह ग्रन्थमाला अपने ढग की अद्वितीय निकल रही है। इसके ग्राहकों को प्रारम्भ में केवल ॥) आना 'प्रवेश फी' भेजना होता है। स्थायी ग्राहकों को पहिले की प्रकाशित और आगे निकलने वाली सभी पुस्तकें पौनी क़ीमत पर मिलेंगी। पहिले की पुस्तकें लेना या न लेना ग्राहक की इच्छा पर है, परन्तु आगे निकलनेवाली पुस्तकें अवश्य लेना होंगी। पुस्तक छपते ही एक सप्ताह पूर्व सूचना देकर वी० पी० द्वारा भेज दी जाती है।

माला की पुस्तकें इतनी रोचक हैं, कि उनके कई एक सस्करण हो चुके हैं।

इसलिए आज ही ॥) भेज कर ग्राहक हो जाइए। इस माला में नई पुस्तकें 'महाराज नन्दकुमार को फांसी' 'बोलशेविकों का पञ्चायती राज्य', 'वज्राघात' आदि पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं।

हिन्दी के सभी प्रकाशकों की पुस्तकें, हमारे यहां से प्राप्त होती हैं.

पता—शिवनारायण मिश्र,

व्यवस्थापक प्रताप-पुस्तक-माला,

प्रताप पुस्तकालय—कानपुर।